अंधकार है वहां जहां आदित्य नहीं है,
है वह मुर्दा देश जहां साहित्य नहीं है।

साहित्य ही अज्ञानको दूर करके ज्ञान प्रकाश करने वाला है। साहित्य ही जागृतिका उत्तम साधन है। हरेक ज्ञाति, देश व धर्मकी उन्नति उत्तम साहित्यसे होती है। इसलिये साहित्य प्रचार करना बहुत आवश्यक है।

शुद्ध सेवाभावसे अल्प मूल्य व लागत मूल्यसे उत्तम साहित्यका प्रचार करने वाली कुछ संस्थाएं ये हैं। इनके सूचीपत्र मंगा कर लाभ उठाना चाहिये।

१. सेठिया पुस्तकालय–बीकानेर.
२. जैनपुस्तक प्रचारक कार्यालय- ब्यावर.
३. आत्मजागृति कार्यालय–बगड़ी (मारवाड).
४. शुद्ध भावना कार्यालय- लोहावर (मारवाड़).
५. जैन सस्तुसाहित्य प्रचारक कार्यालय–कलोल
६. संघवी वाडीलाल काकुभाइ–अमदावाद.
७. सस्तासाहित्य मण्डल–अजमेर.

॥ ॐ सिद्धेभ्यो नमः ॥

समकीतस्वरुप भावना.

(हमेशां नित्यनियममें वांचन मनन करनेकी भावना)

(१) आत्मकल्याण करनेका सरल उपाय
(भावनाका स्वरूप और फल)

(१) सकल शास्त्र पढनेका सार "आत्माके सत्य स्वरूपको समझकर उसे प्रगट करना" है यह "आत्मजागृतिकी भावनाएँ" आत्मस्वरूपको प्रगट करनेका उत्तम साधन है.

(२) सर्व ज्ञानी पुरुषोंने मोक्ष अर्थात् छोटे तथा बडे सब तरहके दुःखोंसे छूटनेका उपाय एक ही बताया है. और वह एक सत्यज्ञान व दूसरा सच्चरित्र है जितने प्रमाणमें ज्ञान तथा चारित्र पवित्र होता है, उतने प्रमाणमें दुःख दूर होते है. "ज्ञान क्रियाभ्याम् मोक्षः" ज्ञान और क्रियासे मोक्ष अर्थात् दुःख रहित बन सकते है. मेरा सत्य स्वरूप क्या है और मेरा कर्तव्य क्या है उसकी भावना करनेसे (वारंवार विचारनेसे) सत्यज्ञान और सच्चारित्र प्रगट होते हैं.

(३) भावनाकी प्रबलतासे उत्कृष्ट आत्मोन्नति करनेका स्थान मनुष्य जन्म होनेसे सब जातिके जन्मोंसे मनुष्य जन्म

श्रेष्ठ माननेमैं आया है कारण परम शुद्ध भावना अर्थात् परम शुक्ल ध्यान द्वारा केवळ ज्ञान केवळ दर्शन अनंत आत्मिक सुख मनुष्य भवमें ही प्रगट हो सकतें है.

(४) एक मनुष्य भवके पीछे असंख्यात नारकीके भव एक नारकीके भव पीछे असंख्य देवताके भव (तिर्यंच गतिमैं से परवश वेदनासे हलके देव अनेकवार होनेसे) और एक एक देव भव पीछे अनंत तिर्यंचके भव करने पडतें है. ऐसा अमूल्य दूर्लभ मेरा मनुष्य भव जो खानपानमैं इन्द्रियोके विषयसुखमें और प्रमादमें जावेगा तो पश्चातापका पार नहिं रहेगा. इस लिए उत्तम भावनाएँ हमेशां चिंत्वन कर सद्‌गुण प्रगट करके सच्चारित्र द्वारा जीवन सफल करना चाहिये.

(५) शुद्ध भाववाली बलवान भावना कार्यकी आधीसे ज्यादा सिद्धि है और पुरुषार्थ करनेसे पूर्ण सिद्धि मीलती है. हरेक विजयको जन्म देनेवाली विजयकी माता दृढ भावना ही है.

(६) जैसा बीज वैसा वृक्ष उत्पन्न होता है उसी प्रकार जैसे विचार वैसा चारित्र बनता है इस लिये अशुभ विचारोको छोड़कर सदा सुविचार ही करना चाहिये. विचार (भावना) ही चारित्र घडतें है.

दोहा शुद्ध भावसो तीर्थ है, उत्तम और अद्‌भूत।
स्नान करी उस तीर्थमैं, त्याशुं मेळ अखूट ॥१॥
है नीच जो भावना, नीचा पद पमाय; ।

लोहेसे लोहज बने, कंचन कहांसे थाय. ॥२॥
परम आत्मकी भावना, शुद्ध भावसे थाय; ।
परमपदको लावती, कारण भाव जणाय ॥३॥
भावे धर्म आराधियें, भावे धरीये ध्यान ।
भावे भावो भावना, भावे केवळ ज्ञान ॥४॥
अशुद्ध भावसे बंध है, शुद्ध भावसे मुक्ति ।
जो जाने गति भावकी, सो जाने यह युक्ति ॥५॥
जगमां मोटी भावना, भावो हृदय मोझार ।
भावथकी भव नीधि तरे, पावे भवनो पार ॥६॥

(७) भावनाके अनुसार जीवन बनता है. ऐसा जानकर आजसे मैं हरकिस्मकी उत्तम भावना ही विचारुंगा, जो मनुष्य मैं दुःखी हूँ, रोगी हूँ, अशक्त हूँ, वृद्ध हो जाउँगा, सफलता नहीं मीलेगी इत्यादी हलके विचार करता है वह वैसा ही बन जाता है और जो मनुष्य ऐसा विचारता है कि मैं सुखी हूँ, निरोगी हूँ, शक्तिमान हूँ, सदा युवान बना रहूँगा. सब इष्ट कार्यमें सफलता ही पाउंगा. इत्यादि उत्तम विचार करता है वह वैसे ही उत्तम फल पाता है. अहिंसा, सत्य, इमानदारी, परोपकारके, विचारोंसे वैसे गुण प्रगट (प्राप्त) होते है, इस लिये मै सदा सद्गुणके ही विचार करुंगा कारण–

जं अब्भसेइ जीवो, गुणं च दोसं च इत्थं जम्मंमि ।
तं पावेइ पुण्णभवे, अब्भासेण पुणो तेण ॥ १ ॥

अर्थ–जो जो गुण अगर दोष इस जन्ममें धारण करे

है वैसेही गुणदोष प्रायः पुनर्जन्ममें पूर्व अभ्याससे वे शिघ्र उत्पन्न हो जातें है. इस लिये सद्गुणको ही मैं धारण करुंगा।

(८) कर्मोका बंधन तथा नाश भावोंके अनुसार ही हर समय होता रहता है. सोते, जागते, चलते, बेठते, हर समय कर्म बंधतें है (संस्कार पडतें है) राग द्वेष मोह रहित निर्मल भावोंसें अनंत अशुभ कर्म नाश होतें है जब कि राग द्वेष मोहके विचारोंसे अनंत अशुभ कर्मोका बंध होता है.

प्रसन्नचन्द्र राजऋषिजीने अशुभ भावनासे सातमी नर्कमें जावे उतने कर्मोका बंध कीया और तत्काल शुद्ध भावना चिंत्वन की तो सब कर्मोंका नाश करके केवल ज्ञान प्रगट किया.

तंदुल मच्छ (चावल जीतना बडा शरीर है) अशुभ विचारोंसे दो घडीके छोटेसे आयुष्य में सातमी नारकीमें चला जाता है यदि थोडी देरके खोटे विचार भी इतने दुःखवर्धक है तो मैं अनेकवार बुरे विचार करता हुं मेरी क्या दशा होवेगी ऐसा विचार करके जो अशुभ विचार आतें है उन्हें धिक्कार देकर मुझे सुविचारमें दाखिल होना चाहिये.

सुविचारही अनंत सुखका कारन है और कुविचार ही अनंत दुःखोंसे भरपुर है.

दोहाः—महा दुःखका बीज है, अशुभ रुप परिणाम;
ताके उदय अनंत दुःख भुगते आतमराम ॥१॥

(९) "सुख" यह जीवका मुख्य गुण है. स्वभाव है वह गुण अज्ञान तथा मोहसे मलिन होनेसे इस मेरे आत्माको

आत्मिक सुख भूलकर इंद्रियजन्य भोग (बाह्य पदार्थ) में सुख दुःखका अनुभव होता है, शुभ भावोंसे बाह्य सुख और अशुभ भावोंसे बाह्य दु.ख उत्पन्न होता है. जब शुद्ध भाव अर्थात् राग द्वेष मोह रहित परिणाम (आत्मध्यान–आत्म रमणता) प्रगट होतें है तब बाह्य सुख दुःख तथा उसके कारन पुण्य पाप प्रकृतिका नाश होकर यह आत्मा अनंत अव्याबाध आत्मिक सुख पाता है.

रोग, शोक, चिंता, भय, जन्म, जरा, मरण, दुःख मात्र अशुभ भावनाका फल है और इन सकल दुखोंसे छूटनेका उपाय एक उत्तम भावना है. उत्तम भावनासे पूर्वके बंधे हुए अशुभ कर्म पलटाए जा सकतें है. उसका नाम शास्त्रमें "संक्रमण" अर्थात् कर्मोंका परिवर्तन कहा है.

शुभ भावनासे अशाता वेदनी शातारुप बनती है, पाप-प्रकृति पुण्यरूप होती है, अशुभ कर्मोंकी लंबी स्थिति घट जाती है. तीव्र रस (अतिशय दुःख) मंद रस (अल्प दुःख) होता है. बहुत कर्म पुंज अल्प हो जातें है. इसी प्रकार बुरी भावनासे शुभकर्म शातावेदनी पुण्य प्रकृतिका नाश भी होता है और पाप प्रकृति बढ जाती है ऐसी शिक्षा पाकर मैं सदा उत्तम भावना विचारुंगा और उत्तम भावना किस तरह कहां विचारना ऐसी जाग्रति करानेवाली इस आत्मजाग्रति भावना को हमेशां नित्य नियमके वांचन मननमें रक्खुंगा.

रोगीको यह भाव औषध है इस भावनासे द्रव्यमे रोग

शांति होवेगी तथा भावमें अशुभ कर्मोंका नाश होवेगा. शारीरिक मानसिक, कौटुम्बिक, व्यापारजन्य तथा जीवन निर्वाहके हरेक दुखोंका नाश करनेका सरल उपाय यह पवीत्र भावना है; इन सब दुःखोंका मूल कारण मेरी मलिन भावना है, इन सब दुःखोंका नाश करनेका सरल उपाय यह पवीत्र भावना है, जिनको भाकर मैं सत्य सुख प्राप्त करूंगा.

(१०) वृक्ष भी दूसरेकी भावनासे फलता है, तथा सुकता है ऐसा विज्ञान शास्त्री श्रीजगदीशचंद्र बोझने प्रत्यक्षमे दिखाया है तो वनस्पति जीवोंसे अनंत गुण विशेष ज्ञानशक्ति जिसको प्रगट हुइ है ऐसी मेरी आत्मा अपने खुद कीही उत्तम भावनासे आत्म उन्नति करे यह यथार्थ है. जिज्ञासु पाठक ! इन भावनाओंमेंसे १ श्री नवकार मंत्र, २ समकितके चार गुण, ३ समकित प्रगट करनेकी छत्तीस भावनाएँ, ४ सद्गुण प्राप्ति तथा दुर्गुण नाशकी बहोत्तर भावनाएँ और अंतके काव्य इतना तो अवश्यमेव रोज एकाग्र चित्तसे पढा करें और कुछ गुण चारित्र मे धारन करें तथा अन्य भावनाएँ अपने जीवनको शिक्षादायी होवे वे पढें.

इन भावनामें जो उत्तमता है वह ज्ञानीओंकी प्रसादी लेकर धरी है जिससे उनही महा पुरुषोंका उपकार मानतें है. और जो भूल होवे सो लेखककी अल्पज्ञता है इसलिये अज्ञान क्षय होकर प्रतिपूर्ण ज्ञान प्रगट होओ ऐसी भावना करतें है.
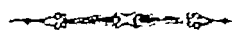
(२) श्री नवकार मंत्र, अर्थ और भावना सहित.

(१) नमो अरिहंताणं:–श्री अरिहंत देवको नमस्कार करता हूँ. "नमो" अर्थात् नमस्कार करता हूं अरि अर्थात् शत्रु क्रोध, मान, माया, लोभ, राग द्वेष, मोह, अज्ञान, मिथ्यात्त्व, विषय, प्रमाद आदि अंतरंग शत्रुओंका सर्वथा "हंताणं" अर्थात् नाश किया है ऐसे प्रभुको नमस्कार करता हूं. मैं भी क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, मोह, अज्ञान, मिथ्यात्व, विषय, प्रमाद आदि अंतरंग शत्रुओंका नाश करूंगा. वह दिन धन्य होउंगा. संसारमें मुझे कोई दु ख नहीं दे सकता. सिर्फ मेरी आत्मा स्वयं क्रोधादिद्वारा दु ख देनेवाला शत्रु बन जाता है, और क्रोधादि दोष त्यागनेसे आत्मा स्वयं परम सुख देनेवाला मित्र बन जाता है। 'जब ऐसी भावना भाकर क्रोधादि भाव शत्रुओंका नाश करुंगा तब सब दुःखोंसे छूट-कर मैं परम सुखी बनूंगा. ये क्रोधादि भाव–शत्रुओंका नाश होनेसे मैं भी अरिहंत हो सकूंगा. इस लिये अब मुझे शीघ्र इन क्रोधादि शत्रुओंके नाश करनेका प्रयत्न क्षमादि गुणद्वारा करना चाहिये।

(२) नमो सिद्धाणं–श्री सिद्ध भगवानका नमस्कार करता हूं. जिन्होंने आत्माके सब आवरण दूर किये है, सब कर्म नाश किये हैं, और जिन्हें अनंत गुण प्राप्त किये है ऐसे सिद्ध भगवानको नमस्कार करता हूं।

आत्माके आठ गुणोंको ढांकनेवाले आठ कर्म है उन्हें नाश करनेवाली भावनाएं ।

(१) ज्ञानावरणीय कर्म का नाश होकर अनंत ज्ञान गुण प्रगट हो.

(२) दर्शनावरणीय कर्मका नाश हो और अनंत दर्शन गुण प्रकट हो.

(३) मोहनीय कर्म नाश होकर अनत आत्मिक सुख क्षायिक सम्यक्त्व और वीतराग चारित्र गुण प्रकट हो.

(४) अंतराय कर्म क्षय हो और अनंत आत्मिक बल प्रगट हो.

(५) वेदनीय कर्म नाश हो और अनंत अव्याबाध सुख प्रगट हो.

(६) आयुष्य कर्मबंधन दूर होकर अजर, अमर, गुण प्रगट हो.

(७) नाम कर्म दूर होकर अरूपी अवस्था मिले.

(८) गोत्र कर्म नाश होकर अगुरु लघु गुण प्रगट हो.

सब कर्म क्षय होकर आत्मिक अनंत गुण प्रकट हो ।

(३) नमो आयरियाणं:- नमस्कार करता हूं श्री आचार्य महाराजको जो पांच आचार स्वयं पालते हैं तथा औरों से पलाते है ऐसे आचार्य महाराजश्रीको वंदना नमस्कार करता हू । ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्या-चार ये पांच आचारका जिस दिन मै पालन करूंगा वही दिन धन्य होगा.

(४) नमो उवज्झायाणं:—श्री उपाध्यायजी महाराजको वंदना नमस्कार करता हूं। जिस दिन मै भी ग्यारह अंग बारह उपांगका ज्ञाता बन सम्यक्त्व सहित उपाध्यायके गुण प्राप्त करूंगा वह दिन धन्य होगा।

(५) नमो लोए सव्व साहूणं-सर्व साधुजी महाराजको नमस्कार करता हू, हिंसा, विषय, कषाय मुझसे छूटे और अहिंसा, संयम, समभाव (अकषाय) गुण मुझे प्राप्त हों वही दिन मेरा सार्थक है.

पंच पदके ये सब गुण मेरी आत्मामे भरे हैं. ये सब गुण मुझमें प्रगटें।

(१) तत्वोंका विशेप २ ज्ञान प्राप्त करूं तथा अज्ञान और मिथ्यात्व त्याग सम्यक् ज्ञान और सम्यक्त्व गुण धारण करके हिंसा, विषय, कषाय, क्रोधादि त्याग आत्माका हित कल्याण और श्रेय करनेके लिये साधुसंयमी बनूं.

(२) साधुपदके गुण प्राप्त कर विशेष ज्ञान शक्ति और ध्यान द्वारा उपाध्याय बनूं.

(३) अतिशय ज्ञान प्राप्त कर श्रेष्ठ चारित्र पाल आचार्य पद प्राप्त करूं।

(४) उत्कृष्ट ज्ञान और संयमद्वारा राग द्वेष मोहका सर्वथा नाश कर अरिहंत बनूं.

(५) अंत समय सब कर्म क्षय कर सिद्ध पद प्राप्त करूं.

ये पांचों पदके गुण मेरी आत्मामें स्थित हैं उन्हें प्राप्त

करनेकी मैं इच्छा रखता हूं और पुरुषार्थसे इन पांचो प्रभुके तुल्य बन सक्ता हूं.

(३) नमस्कारके प्रकार और फल.

दोहा

वार वार प्रभु वंदना, शुद्ध भावे कराय ।
कारण सत्ये कार्यनी, सिद्धि निश्चय थाय ॥१॥

भावार्थः–हमेशां वारम्वार जो भाव वंदना करते हैं अर्थात् प्रभुके समान गुण अपनी आत्मामें भरे है ऐसी भावना लाकर इन गुणोंको प्रकटाते हुए जो वंदना करते हैं वे खुद प्रभु बन जाते हैं । जिन्हें निमित्त कारण सत्य मिल जाता है और जिनके भाव शुद्ध रहते हैं उनकी सिद्धि अवश्य होती है।

(१) द्रव्य नमस्कार–मनकी एकाग्रता किये विना जो वचनसे स्तुति और कायासे नमस्कार करता हैं उनका वचन और कायासे लगता हुआ पाप रुक जाता है और थोडा पुण्य होता है.

(२) व्यवहार नमस्कारः–मन एकाग्र रख जो ज्ञान, चारित्रादि गुणोंकी स्तुति और नमस्कार करते है उन्हे अत्यंत निर्मल पुण्यकी प्राप्ति होती है और शुद्ध उपयोग (राग द्वेष, रहित परिणाम) होवे उतनी निर्जरा (कर्मोंका नाश) होती है।

(३) भाव नमस्कारः-प्रभुके समान मेरी आत्मामें भी सब गुण मौजूद है उन्हें प्रकटानेके लिये प्रभुके समान ही

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप धर्म मैं आदरूं ऐसी दृढ भावना लानेवालोंको बहुत निर्जरा [कर्म नाश] होती है।

(४) निश्चय नमस्कारः—जो राग द्वेष रहित होकर स्वयं प्रभुके समान अपना स्वरूप समझ आत्मध्यानमें मग्न रहता है वह प्रभु बन जाता है, मोक्ष प्राप्त करता है।

दोहा

साधन साधी जुदानको। मानें एक बनाय॥
सो निश्चयनय शुद्ध है। सुनत करम कट जाय॥ १॥

नमन करना, नमस्कार करना अर्थात् हम जिन्हें नमस्कार करते है उनके समान बनते है इस लिये हमें सद्गुणी और पवित्रात्माओंको हमेशां नमस्कार करना चाहिये.

---

(४) समकितको प्रगट करनेवाले चार गुणोंकी भावना.

मोक्षका वीज सम्यक्त्व और सम्यक्त्वका मूल कारण चार भावनाएँ है. इस लिये हमेशां उनका चिन्तवन कर चारों सद्गुण प्राप्त करना चाहिये. ये गुण प्रकट होनेके पश्चात् सम्यक्त्व प्राप्त होती है।

दोहा

गुणीजनोंको वंदना, अवगुण देख मध्यस्थ,
दुःखी देख करुणा करे, मित्र भाव समस्त॥१॥

[१] प्रमोद भावनाः—हमेशां गुणानुरागी बनना। दूसरोंके

जीव हमेशां भावना अर्थात् विचार तो करता ही है परंतु अशुभ भावना ज्यादा रहती है इस लिए भावनाका स्वरूप समझकर शुद्ध भावनाका चिंत्वन करना चाहिये. इन चार भावनाके हरेकके चार चार भेद है।

[१] मैत्रि भावना-[१] मोह मैत्रि-स्त्रि, पुत्र, धन, भोगादि कि बाह्य आनंदकि अपेक्षासे प्रीति [२] शुभ मैत्रि उपकारी सज्जन आदि प्रति प्रीति भक्ति तथा उत्तम काममें ऐक्य [३] शुद्ध साधन मैत्री देव गुरु धर्म व ज्ञान दर्शन चारित्र प्रति भक्ति व मैत्रि. [४] शुद्ध मैत्रि अनंत ज्ञानादि निज गुणोंसे मैत्री-एकताका अनुभव। हे चेतन! तूं ही तेरा मित्र है, क्यों अन्य में ममत्त्व करता है। [आचारांग सूत्र]

[२] प्रमोद भावना-[१] मोहजन्य हर्ष-स्व-परको भोगोपभोगकी प्राप्ति मै आनंद [२] शुभ हर्ष-दान, पुण्य, सेवाभाव, नैतिक गुण व सुविद्या स्व-परको प्राप्त होने मैं हर्ष. [३] शुद्ध साधन हर्ष सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्रकी स्व-परको प्राप्तिमें आनंद. (४) शुद्धानंद-आत्मिक सुख अविकारी अतींद्रिय निर्विकल्प निज सुखमें लीन होना.

(३) करूणा भावना-[१] मोहजन्य करुणा-स्व-परको भोगोपभोग धन, वैभव, प्रशंसा आदि प्राप्त न होने मे दुःखी होना [२] शुभ करुणा-शारीरिक व मानसिक पीडासे दुःखित देखकर करुणा करना [३] शुद्ध साधन करुणा-अज्ञान,

मिथ्यात्व, विषय कषायसे स्व-परको सदा अनंत दुःखी होता जान ये दोष त्याग सम्यग् ज्ञान दर्शन चारित्र विषय संयम व समभाव गुण प्रकट करना तथा प्रकट करवाना. [४] शुद्ध करुणा—स्वस्वभाव [आत्म स्वरुप] मै लीन रहना, ज्ञानादि निजगुणकी मलीनताही दुःख हेतु जान आत्मगुणोकी शुद्धि करना।

[४] माध्यस्थ भावना—[१] मोहजन्य समभाव—लज्जा, भय, लोभ, स्वार्थ या अज्ञानवश शांति धरना [२] शुभ समभाव—ऐक्य, सहनशीलता, गुणानुराग, गंभीरताके गुण तथा कलह, कुसंप, वैरभाव, विरोध के नुकशान विचारकर समभाव धरना. [३] शुद्ध साधन समभाव—राग द्वेष करनेसे भाव हिंसा होती है। मै शब्द, रुप, गंध, रस, स्पर्श, मन, वचन, काया, कषाय, कर्मरहित हूं। मै अनंत ज्ञान, दर्शन, सुख, शक्ति स्वरूप हूँ। ऐसी भावना विचार कर समभाव धरना [४] शुद्ध समभाव परम समरसी भाव वीतराग भाव समभाव ही मेरा निज गुण है मै क्यों विकार पाउँ क्यों राग द्वेष लाउँ ऐसा विचारके निज स्वरूपमै लीन होवे।

चारो भावनामै मोहजन्य पहिला भेद इस लोक तथा परलोकमैं दुःखदायी है व पापबंध हेतु है। और दूसरा शुभ भेद इस लोक तथा परलोकमै बाह्य सुखदायी व पुण्य प्राप्ति का कारण है। तीसरा शुद्ध साधन नामा भेद इस लोक तथा परलोकमे बाह्य तथा आभ्यंतर दोनों सुखदाई व बहुत कर्म

सद्गुण देख खुशी होना और विचार करना कि मुझमें भी ये गुण प्रकटे.

[२] माध्यस्थ भावनाः—समभाव दूसरोंके दोष देख क्रोध, द्वेष करना नहीं परंतु ऐसे दोषोंसे अपनी आत्मा बचे ऐसा उपाय करना। सुखमें खुशी और दुःखमें रंज न लाना. हमेशां राग द्वेष रहित समभावमें रहना ऐसी शक्ति प्रकटे ऐसी भावना वारंवार करना चाहिये.

दोहाः

" दुर्जन क्रूर कुमार्ग रतों पर, क्षोभ नहीं मुझ को आवे;
साम्य भाव रहे सदा उनपर, ऐसी परिणिति हो जावें ॥ १ ॥

(३) करुणा भावनाः—शारीरिक और मानसिक दुःख दूर करना यह द्रव्य करुणा है और क्रोध, मान, माया, लोभ मिथ्यात्त्व छुडाना यह भाव करुणा है. जिस दिन मै अपनी और दूसरे आत्माकी भाव दया करूंगा वही दिन धन्य होगा पापों से स्वयं बचना और दूसरों को बचाना यही भाव करुणा है. इस से अत्यंत लाभ होता है और सच्चा सुख मिलता है ।

(४) मैत्री भावनाः—संसार के समस्त जीवों को अपने समान समझकर किसी भी जीव की हिंसा नही करना, सब का भला चाहना, यही स्व-पर द्रव्य मैत्री भावना है। और अपनी आत्माके सच्चे मित्र बनकर अपने अज्ञान मिथ्यात्त्व कषाय को त्याग सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्रका आराधन

करना यह स्वभाव मैत्री भावना है. मुझे इन चारों भावनाओं के गुणोंकी प्राप्ति हो ।

चार भावना पर हरिगीत छंद.

सौ प्राणी आ संसारना, सन्मित्र मुझ व्हाला थजो;
सद्गुणमां आनंद मानूं, मित्र के वेरी हजो ।
दुःखीया प्रति करुणा. और दुश्मन प्रति मध्यस्थता,
शुभ भावना प्रभु चार आ, पामो हृदयमां स्थिरता ॥१॥

भावार्थः-(१) मैत्री भावनाः-संसारके सब जीवोंको मैं मेरे परम मित्र समझ सबका भला चाहताहूं और उनके सब दुःख दूर हों एसी इच्छा करता हूं ।

(२) प्रमोदः-गुणानुराग भावना-मेरा भला करने वाला मित्र या दुःख देनेवाला शत्रु दोनो के गुण देखाता हूॅ कारण मित्रने सद्गुण पुष्ट कीया है और शत्रुने दोष से बचनेकी तथा सत्य में दृढ रहने की प्रेरणा की है ।

(३) करूणाः-दुःखी के दुःख दूर करनेमं सदा तत्पर रहना, सच्चा दुःख अज्ञान मिथ्यात्त्व, और कु चारित्रको समझ उनसे अपनी आत्माको दूर रखना और दूसरोकी आत्माको बचाना ।

(४) माध्यस्थः-समता भावना-सब जीव और सब अवसर पर समभाव रखना ।

ये चार भावनाएँ सदा विचार इन गुणोंको प्रगट करुं यही मेरी इच्छा है ।

जीव हमेशां भावना अर्थात् विचार तो करता ही है परंतु अशुभ भावना ज्यादा रहती है इस लिए भावनाका स्वरूप समझकर शुद्ध भावनाका चिंत्वन करना चाहिये. इन चार भावनाके हरेकके चार चार भेद है ।

[१] मैत्रि भावना–[१] मोह मैत्रि–स्त्रि, पुत्र, धन, भोगादि कि बाह्य आनंदकि अपेक्षासे प्रीति [२] शुभ मैत्रि उपकारी सज्जन आदि प्रति प्रीति भक्ति तथा उत्तम काममें ऐक्य [३] शुद्ध साधन मैत्री देव गुरु धर्म व ज्ञान दर्शन चारित्र प्रति भक्ति व मैत्रि. [४] शुद्ध मैत्रि अनंत ज्ञानादि निज गुणोंसे मैत्री–एकताका अनुभव। हे चेतन! तूं ही तेरा मित्र है, क्यों अन्य में ममत्त्व करता है । [आचारांग सूत्र]

[२] प्रमोद भावना–[१] मोहजन्य हर्ष–स्व–परको भोगोपभोगकी प्राप्ति मै आनंद [२] शुभ हर्ष–दान, पुण्य, सेवाभाव, नैतिक गुण व सुविद्या स्व-परको प्राप्त होने में हर्ष. [३] शुद्ध साधन हर्ष सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्रकी स्व-परको प्राप्तिमें आनंद. (४) शुद्धानंद–आत्मिक सुख अविकारी अतींद्रिय निर्विकल्प निज सुखमें लीन होना.

(३) करूणा भावना–[१] मोहजन्य करुणा–स्व-परको भोगोपभोग धन, वैभव, प्रशंसा आदि प्राप्त न होने में दुःखी होना [२] शुभ करुणा-शारीरिक व मानसिक पीड़ासे दुःखित देखकर करुणा करना [३] शुद्ध साधन करुणा–अज्ञान,

मिथ्यात्व, विषय कषायसे स्व-परको सदा अनंत दुःखी होता जान ये दोष त्याग सम्यग् ज्ञान दर्शन चारित्र विषय संयम व समभाव गुण प्रकट करना तथा प्रकट करवाना. [४] शुद्ध करुणा–स्वस्वभाव [आत्म स्वरुप] मै लीन रहना, ज्ञानादि निजगुणकी मलीनताही दुःख हेतु जान आत्मगुणोकी शुद्धि करना।

[४] माध्यस्थ भावना–[१] मोहजन्य समभाव–लज्जा, भय, लोभ, स्वार्थ या अज्ञानवश शांति धरना [२] शुभ समभाव–ऐक्य, सहनशीलता, गुणानुराग, गंभीरताके गुण तथा कलह, कुसंप, वैरभाव, विरोध के नुकशान विचारकर समभाव धरना. [३] शुद्ध साधन समभाव–राग द्वेष करनेसे भाव हिंसा होती है। मै शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्श, मन, वचन, काया, कषाय, कर्मरहित हूं। मै अनंत ज्ञान, दर्शन, सुख, शक्ति स्वरूप हूं। ऐसी भावना विचार कर समभाव धरना [४] शुद्ध समभाव परम समरसी भाव वीतराग भाव समभाव ही मेरा निज गुण है मै क्यों विकार पाउँ क्यों राग द्वेष लाउँ ऐसा विचारके निज स्वरूपमै लीन होवे।

चारो भावनामै मोहजन्य पहिला भेद इस लोक तथा परलोकमै दुःखदायी है व पापबंध हेतु है। और दूसरा शुभ भेद इस लोक तथा परलोकमै बाह्य सुखदायी व पुण्य प्राप्ति का कारण है। तीसरा शुद्ध साधन नामा भेद इस लोक तथा परलोकमै बाह्य तथा आभ्यंतर दोनों सुखदाई व बहुत कर्म

क्षयका कारण है। और शुद्ध नामा चौथा भेद इस लोक तथा परलोकमें परम सुखदायी व मोक्ष प्राप्तिका प्रधान कारण है।

---

(५) समकित (आत्मदर्शन—सत्यश्रद्धा)

गुण प्रकट करनेवाली ३६ भावनाएं.

अपनी आत्मा अनादि काल से सम्यक्त्व भावना न लाने से अनंत जन्म मरण के दुःख भोग रही है जिस प्रकार सूर्योदय होते ही सब जगह से अंधकार नष्ट हो जाता है उसी प्रकार सम्यक्त्व गुण प्रकट होते ही सब प्रकारके दुःख और दोष नष्ट हो जाते हैं.

ज्ञानी मनुष्य सादा भोजन [रोटी, छाछ और कढी] मे ही सुख मानता है पर अज्ञानी या विलासी मनुष्य अनेक प्रकारके भोजन मिलने पर भी एक आध वस्तु न मिलनेमे क्रोध, अरुचि और दुःख अनुभवता है इसीप्रकार सम्यक्त्वी जीव नरकमें भी अपने पुराने किये हुए कर्मोंका नाश होता ही स्वयं शुद्ध होता है. शरीर पर मोह रखनेसे दुःख होता है, आत्मा अजर, अमर ज्ञान स्वरूप है ऐसा सोचकर शांति प्राप्त करता है पर मिथ्यात्वी जीव बारहवें देवलोकका महान् देवता होने पर भी मिथ्यात्व और अज्ञान के कारण अन्य देवोंकी विशेष सम्पत्ति देख इर्षा द्वेष और तृष्णाके दुःखसे दुःखी रहता है. उपरोक्त उदाहरणोंका सारांश यही है कि समकित अर्थात् सच्ची समझ यही सुखका मूल है.

ऐसा जानकर यह भावना अवश्य चिंतन करनी चाहिये।

अनेक पूर्वाचार्य समकितकी भावनाका आराधन करनेकी शिक्षा देते हुए फरमाते हैं कि, हे भव्य ! तू छ महीने तक सब कामकाज कोलाहल छोड़कर शुद्ध ब्रह्मचर्यका पालन कर. शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्श इन पांच इन्द्रियोंके विषय, क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार कषाय और आर्त, रौद्र ध्यान (संकल्प विकल्प) का त्याग कर। एकाग्र चित्तसे समकित भावनाका चिंतन कर। छः महीने में तुझे अवश्य सम्यक्त्व गुण प्राप्त होगा, आत्मदर्शन अर्थात् शुद्ध निज आत्माका अनुभव प्राप्त होगा. यही सिद्धोंके सुखका अंश अनुभव है।

यह सम्यक्त्व गुण प्रकट हुए पश्चात् मोक्षकी प्राप्ति स्वयं सिद्ध है. ऐसी कल्याणकारी भावनाएँ शास्त्रकारों और पूर्वाचार्योंने भाव दया लाकर अनंत जन्म मरणके दुःख से बचानेके वास्ते भव्य जीवोंके लाभार्थ फरमाई हैं। वे अनेक स्थानोंसे यहां संग्रह कर लिखी गई हैं. इनका पढ़ना, मनन करना और चिन्तवन करना अपनाही परम हित साधनेमें अवश्य लाभ दायक है।

(१) सम्यक्त्व अर्थात् सच्ची समझ मुझे प्राप्त हो।

(२) मिथ्यात्व अर्थात् उलटी समझका नाश हो।

(३) कुदेव, कुगुरु, और कुधर्मको सच्चे मानने रूप व्यवहार मिथ्यात्वका नाश हो।

(४) व्यवहार नयसे (१) देव, सर्वज्ञ वीतराग प्रभु (२) गुरु, तत्व के ज्ञाता, सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्र के पालनेवाले मुनिराज, (३) धर्म, विवेक सहित अहिंसा तथा विषय कषायका त्याग इन व्यवहार देवगुरु और धर्मकी मदद से निश्चय देव, गुरु, और धर्म प्राप्त करूं निश्चय तो मै शुद्ध सिद्ध रूप हूं,ऐसा समझकर स्वानुभूतिरूपसम्यक्त्व निश्चय देव, मैं शरीरादि सकल वाह्य पदार्थोंसे भिन्नहूँ, अनंत ज्ञानादि गुण मुझ में भरे है, ऐसा ज्ञान यह निश्चय गुरु. भोगादि सर्व पदार्थ अपने नहीं, ऐसा समझकर उनका त्याग, राग द्वेष मोह रहित वन आत्मध्यानमें लीन रहना, यह निश्चय चारित्र । इन गुणोंको मुझे प्राप्ति हो । आत्माको जानना, यह निश्चय ज्ञान; आत्माकी श्रद्धा अनुभूति; यह निश्चय दर्शन; आत्मामें रमण यह निश्चय चारित्र; इच्छा का त्याग, यह निश्चय तप, इन चारों गुणोंमें सदा निश्चलता, अक्षीणता सो निश्चय वीर्य । ये निश्चय पांच आचार मुझे प्राप्त होओ.

(५) तत्त्वकी अरुचि, यह मिथ्यात्त्वका चिन्ह नाश होकर मुझे तत्व पर अतिशय रुचि, यह सम्यक्त्वका चिन्ह प्रकट होओ ।

(६) पर वस्तु मेरी नहीं है तो उसके नाशसे मैं क्यों भय पाऊँ ? खेद देहको होता है, आत्मा अनंत वीर्यमय है सो मैं क्यों खेदित वनूं ? मेरी आत्मासे भय, द्वेष खेद नाश होओ ।

(७) शरीर और अन्य पदार्थोंको मैं अपने समझ हिंसा, विषय, कषाय (क्रोधादि) का सेवन करता हूं। ये दोष दूर हो ओ। ज्ञान, दर्शन, चारित्र स्वरूप, अशरीरी, अरूपी हूँ ऐसे शुद्ध आत्मस्वरूपका अनुभव, यही सम्यक्त्व गुण मुझे प्रकट होओ।

(८) आत्मासे भिन्न वस्तुओंको अपनी वस्तुएँ मानना. सो मिथ्यात्व नाश होओ. अविकारी, शुद्ध ज्ञानस्वरूप आत्मा यही मेरा सत्य स्वरूप है, ऐसा दृढ श्रद्धारूप सम्यक्त्व गुण प्रकट होओ।

(९) अनादि कालसे मिथ्यात्व, मोह, भूल द्वारा भोग व इन्द्रिय सुखको अपने मानना,इस विपरीत बुद्धि अर्थात् मिथ्यात्व का नाश होओ। सर्वज्ञ वीतराग प्रभुकी स्व, पर प्रकाशक जिन वाणी सुनकर अतींद्रिय-आत्मिक सुखका अनुभवरूप समकित गुण प्रकट होवो.

(१०) विषयोंकी इच्छा, यह कर्म रोगकी खुजली है, विकार है। इसका नाश होओ। विषयेच्छा रहित आत्मिक सुख प्रकट होओ।

(११) पर वस्तुकी अभिलाषा, यह भी बड़ा भारी दुःख है। इसका नाश होओ। पर वस्तुकी इच्छाका त्याग, शांत रस, समभाव अवांच्छा रूप सत्य सुख प्रकट होओ।

(१२) कोई भी संयोग सुख दुःख नहीं देते। मैं ही मोह द्वारा, राग द्वेषकी प्रवृत्तिसे स्वयं सुख दुःख उत्पन्न

करता हूँ यह मेरी ही भूल है। सत्य ज्ञान प्रकट होकर मोह मिथ्यात्वका नाश हो और सम्यक्त्व गुण प्रकट होओ।

(१३) अपनी आत्माके सिवाय सब पदार्थ दूसरे हैं। इनपर से मोह ममत्वका नाश होओ। आत्माके शुद्ध गुण प्रकट करनेकी रुचि उत्पन्न होओ।

(१४) बाह्य पदार्थ, शरीर, धन, परिवार, वैभव, निंदा, प्रशंसा सुख दुःखमें आत्मलीनताका नाश होओ.

दोहा

पुद्गलमें राचे सदा, जाने यही निधान।
तस लाभे लोभी रहे, वहिरातम दुःख खान ॥१॥
वहिरातम ताको कहे, लखे न आतम स्वरूप।
मग्न रहे पर द्रव्यमें, मिथ्यावंत अनूप ॥

भावार्थः—जो आत्मस्वरूपको नहीं पहचानते और इंद्रियोंके सुखमें मग्न रहते हैं वे वहिरात्मा अर्थात् मिथ्यात्वी हैं। आत्मज्ञान, आत्मानुभव, और समभाव, ये अंतरात्माके गुण मुझमें प्रगट होवो.

दोहा

पुद्गल भाव रुचि नहिं, ताते रहत उदास।
अंतर आतम वह लहे, परमातम परकाश ॥१॥
अंतर आतम जीवसो, सम्यक् दृष्टि होय।
चौथे अरु फुनि बारवें, गुण थानक लो सोय ॥२॥

(१५) शरीर मोहसे शरीरधारी बन सदा जन्म मरण करने पड़ते हैं। इससे इस शरीर मोहका नाश होओ और परमात्मस्वरूप प्रकट होओ।

स्थिर सदा निज रूपमें, न्यारो पुद्गल खेल।
परमातम तत्र जाणिये, नहिं जवभवको मेल ॥१॥

भावार्थ—जो आत्मस्वरूपमें लीन हैं, पुद्गलको हमेशां भिन्न समझते है, जो सर्वज्ञ वीतराग हुए है और फिर संसारमे भव करने नहीं पड़ते ऐसा परमात्म स्वरूप मुझे प्रकट होओ।

(१६) मै एक हूँ, शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ, अरूपी हूँ, अन्य द्रव्यसे ममत्व रहित हूँ, पुद्गलसे सर्वथा भिन्न हूँ, ज्ञान दर्शनसे एक स्वरूप हूँ, परिपूर्ण हूँ, आनंद स्वरूप हूँ, इंद्रिय रहित, वांच्छा रहित, आत्मिक सुखसे भरा हुआ हूँ ये गुण मेरे में शीघ्र प्रकट होओ।

(१७) इंद्रिय सुखमें आनंद और दुःखमें खेद बुद्धि नष्ट होओ और संयम अर्थात् त्यागमें अरुचि रूप मिथ्यात्वका लक्षण दूर होओ।

(१८) विषयेच्छा दूर हो कर आत्मकल्याणकी इच्छा प्रकट होओ।

(१९) अनेक नय, अभिप्राय, अपेक्षा, समझनेकी समझ प्रकट होओ।

(२०) विषयके साधन शरीर, धन, स्त्री, पति, पुत्र, परिवार, मकान वस्त्र, गहने और वैभवमें ममता, वही मिथ्यात्व

(२०) समकितीका चिन्ह. चोपाई-

सत्य प्रतीति अवस्थाजाकी, दिन दिन रीति गहे समता की।
छिन छिनकरे सत्यको साको, समकित नाम कहावेताको ॥१॥

भावार्थः-जो आत्माका सच्चा स्वरूप निश्चय पूर्वक जाने, समझे और हमेशां समताभाव बढ़ाता रहे. प्रतिक्षण आत्माका अनुभव करे उसे सम्यक्त्वी कहते है, वही सम्यक्त्व गुण मुझे प्रकट होओ।

(२१) सम्यक्त्व के व्यवहारिक पांच लक्षण है, वे प्रकट होओ. सम (समताभाव), संवेग (धर्म-धर्मी और धर्मका फल-मोक्ष से अतिशय प्रीति और भक्ति) निर्वेद, (विषय विकार से अरुचि, त्यागमें आनंद) अनुकम्पा (द्रव्य भाव दुःख दूर करनेकी सदा चिंता) आस्ता (सत्यतत्वों परश्रद्धा) निश्चय (सम्यक्त्वका लक्षण)-शुद्ध आत्माका अनुभव स्वानुभूति स्वस्वरूपका आनंद, इंद्रिय रहित-आत्मिक सुख भोगना निराकुल, अविकारी शांत रसमें स्थिरता पाना-ये गुण मुझे प्रकट होओ.

दोहा-आपा परिचय निज विषे, उपजे नहीं संदेह ।
सहज प्रपंच रहित दशा, समकित लक्षण एह ॥१॥

भावार्थः-आत्माका अनुभव आत्मा में ही करे। कभी अस्थिर न होवे। स्वाभाविक प्रपंच (विषय-कषाय) रहित होवे। यही सम्यक्त्वका लक्षण है।

(३२) सम्यक्त्व के आठ गुण प्रकट होओ।

दोहा:-करुणा, वत्सल, सुजनता, आतमनिंदा पाठ।
समता, भक्ति, विरागता, धर्मराग गुण आठ॥

भावार्थः-करुणा, मैत्री, गुणानुराग, आत्मनिंदा (अपने दोष के लिये पश्चाताप) समभाव, तत्त्वश्रद्धा, उदासीनता (राग, द्वेष रहित रहना) और धर्म प्रेम, ये गुण प्रकट होओ।

(३३) समकित के पांच भूषणः—

दोहा:-चित्त प्रभावना भाव युत, हेय उपादेय वाणी;।
धीरज हर्ष प्रवीणता भूषण पंच वखाणी॥

भावार्थः-अपने और दूसरे के ज्ञान की वृद्धि करना (२) विवेक पूर्वक सत्य, प्रिय और हितकर बोलना (३) दुःखमें धैर्य रखना और सत्य न त्यागना (४) सदा संतोषी, आनंदी रहना और (५) तत्व में प्रवीण बनना; ये गुण मुझमें प्रकट होओ।

(३४) समकित को मलीन करने वाले आठमद जाति, लाभ, कुल, रूप, तप, बल, विद्या और अधिकार मद क्षय होओ।

आठ मल दोष.

चोपाई—

आशंका अथिरता वंछा, ममता दृष्टि दशा दुगंछा।
वत्सल रहित दोष पर भाखे, चित्त प्रभावना मांहि न राखे॥

दूर होओ और ज्ञानदर्शन चारित्रादि आत्माके गुणोंमें स्वामीपना सोही सम्यक्त्व गुण प्रकट होओ।

(२१) भोग, उपभोग और सांसारिक कार्योंमें लीनतारूपी मिथ्यात्वका नाश होओ और ज्ञान दर्शन चारित्र तपमें रुचि बढ़ो।

(२२) सांसारिक कार्य और आठ कर्मका कर्ता मैं ही हूँ। यह मिथ्यात्व क्षय होओ. ज्ञानदर्शन और चारित्रादि निज गुणोंका ही कर्ता मैं हूँ ऐसी समझ, सो समकित गुण प्रगट होओ।

(२३) इंद्रियोंके सुख दुःखका भोक्ता मैं हूँ, यह विकारी दूषित ज्ञान नाश करके जिस दिन मैं आत्मिक सुखका भोक्ता बनूँगा वह दिन सार्थक होगा.

(२४) मिथ्यात्वीका साध्य विषय सुख होता है जिससे शरीर, धन. भोग प्राप्त कर वह राजी होता है. समदृष्टिका साध्य आत्मिक सुख है जिससे ज्ञानदर्शन चारित्र तपकी प्राप्ति कर वह इसीमें आनंद मानता है।

दोहाः-परम ज्ञान मो आत्म है, निर्मल दर्शन आत्म।
निश्चय चारित्र आत्म है, निश्चय तप भी आत्म॥

(२५) शब्दरूप, गंध, रस, स्पर्श, पुद्गल हैं, जड़ हैं, अचेतन हैं, आत्मासे बिलकुल भिन्न पदार्थ है। इनमें मेरापन मानना मिथ्यात्व है। इनपरसे सुख दुःख बुद्धि हटाकर

यह समझना कि अनंत ज्ञानादि गुण सम्पन्न मैंही शुद्ध आत्मा हूँ ऐसी सच्ची समझरूप सम्यक्त्व गुण प्रकट होओ।

(२६) द्रव्य कर्म (आठ कर्म जो आत्मा से लगे है), भावकर्म (राग द्वेष मोह) और नोकर्म [शरीरभोगादि] पुद्गल हैं, जड़ है, अचेतन हैं, आत्मासे बिलकुल भिन्न पदार्थ है, इनमें अपना पन समझना मिथ्यात्व है। इनपर से सुखदुख बुद्धि नाश होकर सर्व कर्म रहित अनंत ज्ञानादि गुण सम्पन्न बननेकी सच्ची श्रद्धारूप समकित गुण प्रकट होओ।

(२७) कर्म व कर्मफल पुद्गल हैं, जड़ हैं, अचेतन है, आत्मासे भिन्न हैं। इनसे ममत्व और सुख दुख बुद्धि हर्ष, शोक, राग, द्वेष, नाश होओ और सर्व कर्म रहित मैं सिद्ध स्वरूप हूं, ऐसी भावना जागृत रहो।

(२८) मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ अनंतज्ञानयुक्त हूँ अरूपी हूँ, अन्य सब पदार्थों से भिन्न हूँ, ज्ञान, दर्शन सुख और शक्ति से परिपूर्ण हूँ, नित्य हूँ, सत् (उत्पन्न ध्रुव और विनाश गुण सहित) हूँ, आनंद स्वरूप हूँ ये मेरे गुण हैं। ऐसी अनुभव सहित अंतर श्रद्धारूप भावना जागृत रहो।

(२९) एक सम्यक्त्व गुण ऐसा प्रबल है कि जो मिथ्या ज्ञान, मिथ्या चारित्र आदि अनंत दोषों को एक साथ दूर करता है। समकित हुआ कि सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र आदि गुण प्रगट होते है इसलिये मुझे सम्यक्त्व प्राप्त होओ.

(२०) समकितीका चिन्ह. चोपाई–

सत्य प्रतीति अवस्थाजाकी, दिन दिन रीति गहे समता की।
छिन छिनकरे सत्यको साको, समकित नाम कहावेताको ॥१॥

भावार्थः–जो आत्माका सच्चा स्वरूप निश्चय पूर्वक जाने समझे और हमेशां समताभाव बढ़ाता रहे, प्रतिक्षण आत्माका अनुभव करे उसे सम्यक्त्वी कहते है, वही सम्यक्त्व गुण मुझे प्रकट होओ।

(२१) सम्यक्त्व के व्यवहारिक पांच लक्षण है. वे प्रकट होओ. सम (समताभाव), संवेग (धर्म–धर्मी और धर्मका फल–मोक्ष से अतिशय प्रीति और भक्ति) निर्वेद, (विषय विकार से अरुचि, त्यागमें आनंद) अनुकम्पा (द्रव्य भाव दुःख दूर करनेकी सदा चिंता) आस्ता (सत्यतत्वों परश्रद्धा) निश्चय (सम्यक्त्वका लक्षण)–शुद्ध आत्माका अनुभव स्वानुभूति स्वस्वरूपका आनंद, इंद्रिय रहित–आत्मिक सुख भोगना निराकुल, अविकारी शांत रसमें स्थिरता पाना–ये गुण मुझे प्रकट होओ.

दोहा–आपा परिचय निज विषे, उपजे नहीं संदेह।
सहज प्रपंच रहित दशा, समकित लक्षण एह ॥१॥

भावार्थः–आत्माका अनुभव आत्मा में ही करे। कभी अस्थिर न होवे। स्वाभाविक प्रपंच (विषय–कषाय) रहित होवें। यही सम्यक्त्वका लक्षण है।

(३२) सम्यक्त्व के आठ गुण प्रकट होओ ।

दोहाः–करुणा, वत्सल, सुजनता, आतमनिंदा पाठ ।
समता, भक्ति, विरागता, धर्मराग गुण आठ ॥

भावार्थः–करुणा, मैत्री, गुणानुराग. आत्मनिंदा (अपने दोष के लिये पश्चाताप) समभाव, तत्त्वश्रद्धा, उदासीनता (राग, द्वेष-रहित रहना) और धर्म प्रेम, ये गुण प्रकट होओ।

(३३) समकित के पांच भूषणः—

दोहाः–चित्त प्रभावना भाव युत, हेय उपादेय वाणी ।
धीरज हर्ष प्रवीणता भूषण पंच बखाणी ॥

भावार्थः–अपने और दूसरे के ज्ञान की वृद्धि करना (२) विवेक पूर्वक सत्य, प्रिय और हितकर बोलना (३) दुःखमें धैर्य रखना और सत्य न त्यागना (४) सदा संतोषी, आनंदी रहना और (५) तत्व में प्रवीण बनना; ये गुण मुझमें प्रकट होओ ।

(३४) समकित को मलीन करने वाले आठमद जाति, लाभ, कुल, रूप, तप, बल, विद्या और अधिकार मद क्षय हो

आठ मल दोष.

चोपाई–

आशंका अथिरता वंछा, ममता दृष्टि दशा दुर्गंछा ।
वत्सल रहित दोष पर भाखे, चित्त प्रभावना मांहि न राखे ।

[१] सत्य तत्व में संशय [२] धर्म में अस्थिरता [३] विषयकी वांच्छा [४] देह भोग आदि में ममत्व [५] प्रतिकूल प्रसंग में घृणा, अरुचि [६] गुणानुरागी न होना [७] किसी के दोष कहना और (८) अपने और दूसरे के ज्ञान की वृद्धि न करना। देव गुरु और धर्म तथा शास्त्रकी परीक्षा न करना सो मूढता है। ये सब दोष समकित गुणको मलीन करने वाले है, इन्हें सदा त्यागूँ।

(३५) समकित के नाश करने वाले पांच कारण सदा छोडूँगा.

दोहाः—ज्ञान, गर्व, मति मंदता, निष्ठुर वचन उद्‌गार।
रुद्र भाव आलस दशा, नाश पंच प्रकार॥

(१) ज्ञानका घमंड करना (२) तत्व जाननेमें मंद रुचि और कम प्रयत्न (३) असत्य और निर्दय वचन बोलना (४) क्रोधी परिणाम (५) उत्तमज्ञान चारित्रादिमें आलसः—ये पांच समकितके नाश करनेवाले दोषोंसे सदा बचूँ. समकितके पांच अतिचार.

दोहाः—लोक हास्य भय भोग रुचि, अग्र शोच थितिमेव।
मिथ्या आगमकी भक्ति, मृषा दर्शनी सेव॥१॥

(१) मेरी सम्यक्त्वादि प्रवृत्ति से लोग हँसेगे ऐसा भय ...न, यह शंका (२) पांच इंद्रिय के भोग की रुचि करना यह कंखा (३) सद्‌गुण अथवा उत्तम तत्त्वकी अरुचि यह विति

गिच्छा (४–५) मिथ्या देव गुरु धर्मकी प्रशंसा करना अथवा सेवा करना, ये पांच दोष हमेशां छोड़ूं.

(३६) पर वस्तुको अपनी समझ क्रोध, मान, माया (कपट), लोभ पैदा करना अनंतानुबंधी कषाय है जिससे अनंत संसार तथा अनंत दुःख मिलता है. मिथ्यात्व मोहनी (खोटेमे आनंद), मिश्र मोहनी (सत्य असत्य दोनों में आनंद), समकित मोहनी (सत्यमें कुछ मलीनता), ये सात प्रकृति दूर करनेसे समकित गुण प्रकट होता है। ये सातों प्रकृतिका मै नाश करूं और हमेशां सम्यक्त्व गुण धारण कर अनंत, अक्षय, सुख, पाऊं।

दोहाः–प्रकृति सातो मोहकी, कहू जिनागम जोय।
जिनका उदय निवारके, सम्यगदर्शन होय ॥१॥

(६) मिथ्यात्व नाश करनेकी भावनाएँ.

मिथ्या अर्थात् झूंठ, असत्य। मिथ्यात्व में "त्व" भाव वाचक संज्ञाका प्रत्यय है. ज्यों मनुष्यत्व (मनुष्यपना) त्यों मिथ्यात्व अर्थात् असत्यपना, खोटी समझ, असत्य समझ, अयथार्थ समझ ही मिथ्यात्व है। मेरा जीव स्वयं कौन है अपने खास शुद्ध गुण क्या हैं ? कर्म संयोग से मन, और काया तथा इंद्रियोंकी प्राप्ति हुई हैं। मिथ्यात्वके

[१] सत्य तत्व में संशय [२] धर्म में अस्थिरता [३] विषयकी वांच्छा [४] देह भोग आदि में ममत्व [५] प्रतिकूल प्रसंग में घृणा, अरुचि [६] गुणानुरागी न होना [७] किसी के दोष कहना और (८) अपने और दूसरे के ज्ञान की वृद्धि न करना। देव गुरु और धर्म तथा शास्त्रकी परीक्षा न करना सो मूढता है। ये सब दोष समकित गुणको मलीन करने वाले है, इन्हें सदा त्यागूँ।

(३५) समकित के नाश करने वाले पांच कारण सदा छोडूँगा.

दोहाः–ज्ञान, गर्व, मति मंदता, निष्ठुर वचन उद्गार।
रुद्र भाव आलस दशा, नाश पंच प्रकार॥

(१) ज्ञानका घमंड करना (२) तत्व जाननेमें मंद रुचि और कम प्रयत्न (३) असत्य और निर्दय वचन बोलना (४) क्रोधी परिणाम (५) उत्तमज्ञान चारित्रादिमें आलसः–ये पांच समकितके नाश करनेवाले दोषोंसे सदा बचूँ. समकितके पांच अतिचार.

दोहाः–लोक हास्य भय भोग रुचि, अग्र शोच थितिमेव।
मिथ्या आगमकी भक्ति, मृषा दर्शनी सेव॥१॥

(१) मेरी साम्यक्त्वादि प्रवृत्ति से लोग हँसेगे ऐसा भय रखना, यह शंका (२) पांच इंद्रिय के भोग की रुचि करना यह कंखा (३) सदूगुण अथवा उत्तम तत्त्वकी अरुचि यह विति

गिच्छा (४–५) मिथ्या देव गुरु धर्मकी प्रशंसा करना अथवा सेवा करना, ये पांच दोष हमेशां छोडूं.

(३६) पर वस्तुको अपनी समझ क्रोध, मान, माया (कपट), लोभ पैदा करना अनंतानुबंधी कषाय है जिससे अनंत संसार तथा अनंत दुःख मिलता है. मिथ्यात्व मोहनी (खोटेमे आनंद), मिश्र मोहनी (सत्य असत्य दोनों में आनंद), समकित मोहनी (सत्यमें कुछ मलीनता), ये सात प्रकृति दूर करनेसे समकित गुण प्रकट होता है। ये सातों प्रकृतिका मै नाश करूं और हमेशां सम्यक्त्व गुण धारण कर अनंत, अक्षय, सुख, पाऊं।

दोहाः—प्रकृति सातो मोहकी, कहू जिनागम जोय।
जिनका उदय निवारके, सम्यगदर्शन होय ॥१॥

(६) मिथ्यात्व नाश करनेकी भावनाएँ.

मिथ्या अर्थात् झूंठ, असत्य। मिथ्यात्व में "त्व" भाव वाचक संज्ञाका प्रत्यय है. ज्यों मनुष्यत्व (मनुष्यपना) त्यों मिथ्यात्व अर्थात् असत्यपना, खोटी समझ, असत्य समझ, अयथार्थ समझ ही मिथ्यात्व है। मेरा जीव स्वयं कौन है? अपने खास शुद्ध गुण क्या हैं? कर्म संयोग से मन, वचन और काया तथा इंद्रियोंकी प्राप्ति हुई हैं। मिथ्यात्वके कारण

मन, वचन, काया से भिन्न अनंत ज्ञान सुख पूर्ण आत्म स्वरूपका निश्चय और अनुभव नहीं हो सकता इसलिये मिथ्यात्व नष्ट होओ और शुद्ध आत्माका अनुभव और निश्चय प्रकट होओ. मिथ्यात्व के मुख्य पांच भेद है। वे अवश्य त्यागने चाहिये।

(१) अभिग्रहिक (एकांतिक) मिथ्यात्वएकान्त पक्ष माने; ज्ञान और क्रिया व्यवहार (अहिंसा, संयम, तप), निश्चय (आत्मध्यान, स्वरूप लीनता) दोनों धर्म उचित स्थान पर न माने, स्याद्वाद अर्थात् अपेक्षा आशय नहीं समझे, समझ विना स्वीकार कर लेवे, कुळ परम्परा से–देखादेखी श्रद्धा करे। नवतत्वका ज्ञान, नय, और प्रमाण द्वारा कर, यथार्थ तत्व निश्चय न करना सो अभिग्रहिक मिथ्यात्व नष्ट होओ और समझ सहित, सत्य अपेक्षा सहित नय, प्रमाण द्वारा यथार्थ तत्व श्रद्धा रूप सम्यक् दर्शन गुण प्रकट होओ।

(२) अनाभिग्रहिकः–[वैनयिक] मिथ्यात्व–सवदेव एकसे समझे, सव गुरु, सव धर्म, और सव शास्त्र सच्चे माने, परीक्षा रहित ऐसी दशा क्षय होओ और द्वेष रहित समभाव से परीक्षा पूर्वक यथार्थ तत्व–निश्चय प्रकट होओ।

(३) अभिनिवेशिक (विपरीत) मिथ्यात्व–असत्यको सत्य माने, अति कदाग्रही, सत्य समझाते भी न समझे और अपने दोषको भी गुण समझे। मान, मोहके उदय से असत्य पक्ष न त्यागे, भूल मालूम होने पर भी "मैंने कहा वही सच्चा कहे पर सच्चा सो मेरा ऐसा न कहे"।

लोह बनियेकी तरह पकड़ी हुई टेक न छोड़े. मैंने आजतक इस प्रकार असत्य पकड़ रक्खा. अपनी भूल नहीं स्वीकारकी इसलिये मुझे धिक्कार है. सब मिथ्यात्व में यह वडा मिथ्यात्व है जिसका मै ने सेवन किया। यह विपरीत मिथ्यात्व नाश हो और अब मेरी बुद्धि सार और सत्य ग्रहण करने में तत्पर रहो और यथार्थ तत्व श्रद्धा प्राप्त होवो।

(४) संशयिक मिथ्यात्व–सत्य में कुछ अस्थिरता और सूक्ष्म–गूढ विषय में संदेह प्राप्त होने के विचार नाश होओ निःसंदेह यथार्थ तत्व श्रद्धा प्रकट होओ. ये चार मिथ्यात्व, संज्ञी मनवाले विशेष बुद्धिशाली जीवको ही हो सकते हैं

(५) अज्ञान मिथ्यात्व–जीव अजीवादि नव तत्वके ज्ञान रहित धर्म क्या है ? आत्मा क्या है ? जो यह न समझे. केवल शरीर चिंता और इंद्रिय–सुख प्राप्त करने में और दुख हटाने में ही लीन रहे. इसमें मन रहित सब जीव और मन वाले धर्म रुचि रहित सब जीवोंका समावेश होता है. यह दशा जीवकी सबसे अधिक रहती है. इसमें रहकर अनंत दुःख पाया, इस लिये मुझे धिक्कार है। अब तत्त्वका ज्ञान सीख सत्य श्रद्धावंत बननेकी भावना प्रगट होओ.

आजतक मन वचन कायासे मिथ्यात्त्व में, खोटी समझ में श्रद्धा रखी, रखाई, और रखतेको भला समझा, इसलिये मुझे धिक्कार है. और सत्यतत्त्व, निश्चय आत्मानुभव (स्वानुभूति) सम्यक्त्व गुण प्रकट होओ.

(७) सद्गुण पाने और दुर्गुण नाश करनेकी ७२ भावनाएँ.

(१) मै मेरे आत्माके सत्यस्वरूप को पहिचानू यही मेरा परम कर्तव्य है. मै मेरे आत्म स्वरूपका सच्चा ज्ञान प्राप्त करूंगा तभी धन्य होऊंगा.

(२) शरीर, कुटुम्ब, धन तथा बाह्य पदार्थोंको मैं अपने समझता हूं इसलिये मुझे धिक्कार है. शरीर कुटुम्ब, धन तथा बाह्य पदार्थोंका जिस दिन मै मोह छोडूंगा वही दिन धन्य होगा।

(३) शरीर, इंद्रिय सुख, परिवारके लिये मै बहुत पाप करता हूं, कराता हूं, और करनेवालेको अच्छा समझता हूं, इसलिये मुझे धिक्कार है. सब पाप कर्म छोड़कर जिसदिन आत्म कल्याण करनेवाला अहिंसा, संयम और तप, धर्मका पालन करूंगा वहीदिन धन्य होगा.

(४) अनेक छोटे या बड़े जीवोंकी प्रमादवश हिंसा करता हूं, इसलिये मुझे धिक्कार है. मुझ में अहिंसा पालन करनेकी शक्ति प्रगट होओ.

(५) झूंठ बोलनेके कारण मैं धिक्कारका पात्र हूं सत्य, प्रिय और हितकर बोलनेका मुझमें सामर्थ्य आवे.

(६) विना सोचे बोलता हूं; इसलिये मुझे धिक्कार है.

पूर्ण विचार किये बाद जरूरी, प्रिय और सत्य तथा थोड़ा बोलनेके गुण प्रकट होओ।

(७) बेइमानी करता हूं, इस लिये मुझे धिकार है। शक्ति होते हुए दान न देना, सेवा नहीं करना, यह भी बेईमानी है, तथा त्रस, स्थावर जीवको मारना यह प्राण लूटनेकी बड़ी चोरी है। मैं इन दोषोंको छोड़ नीतिवान सदा रहूँगा.

(८) विषय सेवन किया, इसलिये मुझे धिकार है। शुद्ध ब्रह्मचर्य गुण प्रकट होओ।

(९) तृष्णा करता हूं, इसलिये मुझे धिकार है। संतोष गुण प्रकट होओ।

(१०) पति (स्त्री) परिवार धनादि में ममत्व रखता हूं, इसलिये मुझे धिकार है। संसारकी सब वस्तुओं से ममत्वका नाश हो।

(११) क्रोध करता हूं, इसलिये मै धिकारका पात्र हूं. क्षमा गुण प्रकट होओ।

(१२) मान करता हूं, इसलिये मुझे धिकार है। विनय गुण प्रकट होओ।

(१३) माया कपट करता हूं, इसलिये मुझे धिकार है सरलता (निष्कपटता) प्राप्त होओ.

(१४) लोभ करता हूं, इसलिये धिकारने योग्य हूं. उदारताका गुण प्रकट होओ।

(१५) राग करता हूं इसलिये मुझे धिक्कार है। वैराग्य गुण प्रकट होओ।

(१६) द्वेष करता हूं, इसलिये मुझे धिक्कार है। गुणानुराग सबके गुण लेनेकी बुद्धि प्रकट होओ।

(१७) कलह, कंकास किया, इसलिये मुझे धिक्कार है। समता गुण प्रकट होओ।

(१८) विकथा (फिजूलवातें) की, इसलिये मुझे धिक्कार है। धर्म कथा करनेका गुण प्रकट होओ।

(१९) पर निंदा बहुतकी, इसलिये मैं धिक्कारका पात्र हूं। गुणगान (दूसरोंके गुण) करनेका गुण प्रकटो.

(२०) सांसारिक कामों में आनंद माना, इसलिये मुझे धिक्कार है. धर्म में आनंद प्राप्त हो.

(२१) परवस्तु शरीर आदिको मैं अपने मानताहूँ यह मिथ्यात्व नाश होओ। ज्ञान, दर्शन, चारित्र स्वरूप मैं हूँ, अन्य सब पदार्थ मेरेसे भिन्न है. ऐसी मान्यता वही सम्यक्त्व गुण प्रकट होओ।

(२२) अज्ञान दशा में हूँ, इसलिये मुझे धिक्कार है। अनंत ज्ञान (केवलज्ञान) प्रकट होओ। (केवल अर्थात् शुद्ध)

(२३) सम्यक्ज्ञान सीखने में मैं आलस्य करता हूं, इसलिये मुझे धिक्कार है। अपूर्व, तत्वज्ञान (आत्मज्ञान) हमेशां सीखूंगा वही दिन धन्य होगा.

(२४) निद्रा (ऊंघ) बहुत लेता हूं, इसलिये मुझे धिक्कार है। निद्रा छोड़ धर्म ध्यान में ही विशेष रहूंगा वही दिन धन्य होगा.

(२५) सुख में खुश और दुखमें दिलगीर होता हूं। इसलिये मुझे धिक्कार है. समभावगुण प्रकट होओ।

(२६) मोह करता हूँ इसलिये मुझे धिक्कार है, निर्मोही गुण प्रकट होओ।

(२७) शरीरको मैं अपना समझता हूं, इसलिये मुझे धिक्कार है. शरीर मोह नाश होओ।

(२८) यश, कीर्तिकी इच्छा करता हूँ, इसलिये मुझे धिक्कार है. स्तुति, निंदामें समभाव गुण प्रकट होओ।

(२९) उत्तम काम करनेमें मैं झूंठा भय रखता हूँ इसलिये मुझे धिक्कार है। उत्तम काम में मुझे निर्भयता प्रगट होओ.

(३०) पापके कार्य मे मैं अभय रहता हूँ इसलिये मुझे धिक्कार है. पापका काम करते वक्त मैं भयभीत होकर वह छोडूंगा वही दिन धन्य होगा.

(३१) पाप करने मे चतुराई करता हूं, इसलिये मुझे धिक्कार है. पाप बढ़ाने में चतुराईका नाश होओ. धर्मकार्य में तथा पाप घटाने में चतुराई प्रकट होओ।

(३२) पाप करने में पुरुषार्थ करता हूं, इसलिये मुझे धिक्कार है. पाप घटाने तथा धर्म करने में (पुरुषार्थ) उद्यम करनेकी इच्छा प्रकट होओ.

(३३) पाप कर्म करने में बल शक्ति लगाता हूँ, इसलिये मुझे धिक्कार है। पाप घटाने तथा धर्म कार्य करने में शक्ति बल प्रकट होओ।

(३४) पाप कार्य करने में धैर्य रखता हूँ इसलिये मुझे धिक्कार है. धर्म कार्य में धैर्य प्रकट होओ।

(३५) पाप कार्य करने में दृढता रखता हूँ, इसलिये मुझे धिक्कार है। पाप घटाने तथा धर्म कार्य में दृढ रहनेकी शक्ति प्रकट होओ।

(३६) पापकर्म करने मे शूरवीरता दिखाता हूँ, इसलिये मुझे धिक्कार है. पाप घटाने और धर्मकार्य करने मे शूरवीरता दिखानेका साहस प्रकट होओ।

(३७) पापकार्य करने में प्रीति रखता हूँ इसलिये मुझे धिक्कार है. पाप घटाने तथा धर्मकार्य करने में अतिशय प्रीति प्रकट होओ।

(३८) पापकार्य करने में सफलता चाहता हूँ, इसलिये धिक्कार है। पाप घटाने तथा धर्मकार्य करने में सफलता प्राप्त होओ।

(३९) अभिमान करता हूँ, इसलिये मुझे धिक्कार है. नम्रता गुण प्रकट होओ।

(४०) बाह्य पदार्थ प्राप्त करनेमें पुरुषार्थ करता हूँ, इस लिये मुझे धिक्कार है। आत्महित के कार्यमें पुरुषार्थ करूंगा वही दिन धन्य होगा.

(४१) कठोन शब्दसे नाराज और मधुर शब्दसे राजी होता हू इस लिये मुझे धिक्कार है। अच्छे और बुरे वचनोंपर समभाव रखनेकी शक्ति प्राप्त होओ।

(४२) विषयकषायकी बातें सुनता हूं, इस लिये मुझे धिक्कार है। धर्मकी बातें हमेशा सुनुंगा वही दिन धन्य होगा.

(४३) नारकी तिर्यंच, मनुष्य देवादि रूप होना तथा अज्ञान विषय रुचि, कषायादि धारण करना मेरे आत्माकी अशुद्ध हालत (विभाव पर्याय) है इसका नाश होकर अशरीरी अरूपी, अनंत ज्ञानदर्शन सुखशक्तिकी प्राप्ति शुद्ध हालत (स्व-भाव पर्याय) सिद्ध स्वरुप प्रकट होओ.

(४४) अच्छी गंध आनेसे हर्ष और दुर्गंध आनेसे शोक किया, इस लिये मुझे धिक्कार है. सुगंध दुर्गंधमें समभाव प्रकट होओ।

(४५) मोहके वश होकर रूप देखे, इस लिये मुझे धिक्कार है. दृष्टि संयम प्रकट होओ, दृष्टि कुशीलका नाश होओ.

(४६) अच्छे, बुरे, स्वादमें हर्ष शोक किया, इस लिये मुझे धिक्कार है। सब स्वादोंमे समभाव गुण प्रकट होओ.

(४७) मैं खाऊ (खानेका लालची) हूँ, इस लिये मुझे धिक्कार है. रसेंद्रियपर संयम रखनेकी शक्ति प्रकट होओ.

(४८) खाने पीनेमें लालच करता हूँ इस लिये मुझे धिक्कार है. भोजनमें संयम (अंकुश) करुंगा वही दिन धन्य होगा।

(४९) भोगकी अभिलाषा करता हूं, इस लिये मुझे धिक्कार है. सब तरहसे मेरी भोगकी इच्छाका नाश होओ।

(५०) अनीतिसे धन संचय करता हूं, इसलिये मुझे धिक्कार है. न्याय संपन्न धनमें संतोष प्राप्त होओ.

(५१) लोक भयसे कुरिवाजका पालन करता हूं, इस लिये मुझे धिक्कार है. कुरिवाज छोड़नेकी हिम्मत प्रकट होओ. प्रत्येक रीति रिवाजका रहस्य (हेतु) समझकर हितकारी आचरण करनेकी शक्ति प्रकट होओ।

(५२) कुटुम्बसे मोह रखता हूँ इसलिये मुझे धिक्कार है। सर्व जगत्के जीव मात्रसे मित्र भावना प्रकट होओ।

(५३) असंयमका नाश होओ. संयम गुण प्रकट होओ।

(५५) कुज्ञान [अज्ञान] का नाश होओ। सुज्ञान [सम्यक् ज्ञान] प्रकट होओ।

(५६) नियाणा [इन्द्रिय सुखकी इच्छा सब नियाणा है] आज तक किया इस लिये मुझे धिक्कार है. विना इच्छासे आत्मस्वभावसे ही ज्ञानदर्शन, चारित्र और तपका पालन होओ । विषयकी इच्छा मात्र निदान है जिसका नाश होओ.

(५७) आहारकी इच्छा (संज्ञा) का नाश होओ. तपका गुण तथा अनाहार (निराहार) आत्माका शुद्ध गुण प्रकट होओ.

(५८) अनित्य, अशरण, अनंत दुःखदायक काम भोगकी इच्छाका नाश होओ. नित्य, शरणभूत अनंत सुखदायक शुद्ध ब्रह्मचर्यका हमेशां पालन होओ.

(५९) चारित्र गुणका विकार (मलीनावस्था) भोगेच्छा का नाश होओ. चारित्र गुणका अविकार [शुद्धावस्था] आत्म रमण गुण प्रकट होओ.

(६०) अति क्रूरता, अति द्वेष, विषयांधता, गुणीजनकी निंदा आदि महा * मोहनीय कर्म बंधनके कारणोका मैंने सेवन किया है, इस लिये मुझे धिक्कार है. दया गुणानुराग विषयत्याग और समभावके सेवनसे महा मोहनीय कर्मका नाश होओ.

(६१) ज्ञान नाशके चार कारणः–× (१) सदोष आहार

* जिसकी स्थिति उत्कृष्ट ७० क्रोडा क्रोड सागरोपमकी है और जो अनंत जन्म, मरण दाता है। उसे महा मोहनीय कर्म कहते है।

× हिंसामय अथवा रागद्वेष युक्त.

पानी (२) कालोकाल ज्ञान ध्यानमें प्रमाद (३) पहिली तथा पिछली रात्रिमें धर्म जागरण न करना (४) विकथा अथवा ज्ञान ध्यान छोड़कर व्यर्थ वातें करना. इन चारोंमेंसे एक भी कारणका सेवन किया हो तो मुझे धिक्कार है. चार दोषोंका त्याग कर सम्यक ज्ञानकी उत्कृष्ट आराधना होओ.

(६२) चार दुःख शैय्या (सेजा) (१) परवस्तुको अपनी मानना (२) अपने लाभसे संतुष्ट न रहकर दूसरोंके लाभ खुद प्राप्त करनेकी इच्छा करना. (३) भोगकी वांच्छा करना (४) रोग, उपसर्ग आनेसे घवरा जाना, अनुकुल आकुल होना, हिंसाके उपचार करना ये उपरोक्त चार शैय्या सेवनकी, इस लिये मुझे धिक्कार है. इनका नाश होओ. चार सुख शैया. (१) आत्म अनुभव भेद भावना (२) संतोप (३) विषय संयम (४) दुःखादिमें धैर्य प्रकट होओ।

(६३) जड़वाद अर्थात् शरीर चिंता, भोग वांच्छा, विलासी जीवन, धन मोहका क्षय होओ. आत्मज्ञान, भेदज्ञान, विपयत्याग, उत्कृष्ट दान और समभाव प्रकट होओ।

(६४) आज तक मिथ्यात्वसे, भूलसे भ्रमसे, शरीर इंद्रिय और विषयद्वारा कर्म बांधे है इस लिये मुझे धिक्कार है.

उन कर्मोंका नाश होओ। और कर्मरहित सिद्धावस्था प्रकट होओ।

(६५) राग, द्वेष, मोह मिथ्यात्व रूपी कर्तव्य कर्म चेतनाका नाश होओ समता भाव सो ही ज्ञान चेतना प्रकट होओ।

(६६) इंद्रियोंके विषयमें सुख दुःख बुद्धि सो कर्मफल चेतनाका नाश होओ. समताभाव प्रकट होओ.

(६७) परको स्वतः का समझानेवाली अज्ञान बुद्धि नाश होओ. राग द्वेष रहित, उदासीन भावकी समझ बुद्धि प्रकट होओ.

(६८) मनके संकल्प (इष्ट अनिष्ट बुद्धि)का नाश होओ। निर्विकल्प अवस्था प्राप्त होओ।

(६९) ध्यान, मौन समाधि प्राप्त होओ।

(७०) सकल शास्त्रका सार—आत्म स्वरुपका ज्ञान प्रकट होओ।

(७१) प्रकृति और प्रदेश कर्म बंधका कारण मन वचन कायाकी प्रवृत्तिका त्याग होओ तथा स्थिति और अनुभाग बंधका कारण क्रोध, मान, कपट, लोभ, राग, और द्वेषका नाश होओ।

(७२) ज्ञान दर्शन, चारित्र और तपरूपी मोक्षमार्गकी पूर्ण आराधना होओ।

पढ़ने और सुननेसे सामान्य बोध होता है। मनन करनेसे ज्ञान संशय रहित और दृढ़ होता है और वारंवार मनन करनेसे तत्व पर विचार करनेसे, उसी विषयका चिंत्वन करनेसे, अर्थात् शुद्ध भावना और ध्यान द्वारा आंतरिक आत्माके आवरणों (ढ़कन) का नाश होता है, मिथ्यात्वकी गांठका नाश होता है और आत्मदर्शन अर्थात् शुद्ध समकित गुण प्रकट होता है। अर्थात् वारंवार मनन करनेका फल मोक्ष है इस लिये इन भावनाओंका हमेशां नित्य नियममें चिंत्वन करना चाहिये.

:: श्री वैराग्य पच्चीसी. ::

(दोहा)

रागादिक दूषण तजे, वैरागी जिन देव।
मन वच सीस नवायके, कीजे तिनकी सेव ॥१॥
जगत मूल यह राग है, मुक्ति मूल वैराग।
मूल दोहुनको यह कह्यो, जाग सके तो जाग ॥२॥
क्रोध मान माया धरत, लोभ सहित परिणाम।
ये ही तेरे शत्रु हैं, समझो आतमराम ॥३॥
ये ही चारों शत्रुको, जो जीते जग मांहि।
सो पावहि पथ मोक्षको, या में धोको नांहि ॥४॥
जा लक्ष्मीके काज तू, खोवत है निज धर्म।
सो लक्ष्मी संग ना चले, काहे भूलत धर्म ॥५॥
जिहि कुटुम्बके हेतु तू, करत अनेक अन्याय।
सो कुटुम्ब अग्नि लगा, तो कूं देत जलाय ॥६॥
पोषत है जा देहको, जोग त्रिविधि के लाय।
सो तो कूं छिन एकमें, दगा देय खिर जाय ॥७॥
लक्ष्मी साथ न अनुसरे, देह चले नहिं संग।
काढ काढ़ स्वजन हि करे, देख जगतके रंग ॥८॥
दुर्लभ दश दृष्टान्त सम, सो नर भव तुम पाय।
विषय सुखनके कारने, सर्वस्व चले गमाय ॥९॥
जगहि फिरत के युग भये, सो कछु कियो विचार।
चेतन अब किन चेतहू, नर भव लहि अतिसार ॥१०॥
ऐसे मति विभ्रान्त हुइ, विषयनि लागत धाय।
के दिन के छिन के घडी, यह सुख थिर ठहराय ॥११॥
पीतो सुधा स्वभावकी, जीतो कहूं सुनाय।
तू रीतो क्यों जात है, बीतो नर भव जाय ॥१२॥
मिथ्या दृष्टि निकृष्ट अति, लखे न इष्ट अनिष्ट।
भ्रष्ट करत है शिष्टको, शुद्ध दृष्टि है पिष्ट ॥१३॥

चेतन कर्म उपाधि तज, राग-द्वेषको संग।
ज्यों प्रकटे परमात्मा, शिवसुख होय अभंग ....

ब्रह्म कहूँ तो मैं नहीं, क्षत्रिय हू पुनि नाहि।
वैश्य शूद्र दोऊ नहीं, चिदानंद हू माहि ॥१५॥

भेदे वे इहि नैन सों, सो सब विनस्यो जाय।
तासो जो अपनो कहे, सो मूरख सिरराय ॥१६॥

पुद्गलको जो रूप है, उपजे विनसे सोय।
जो अविनासी आतमा, सो कछु और हि होय ॥१७॥

देख अवस्था गर्भकी, कौन कौन दुख होइ।
वहुर लगन ससाहमें, तो लानत है तोई ॥१८॥

अधो सीस उरध चरन, कौन अशुद्ध अहार।
थोड़ दिनकी बात यह, भूलि जात संसार ॥१९॥

अस्थि चर्म मलमूत्रमें, रैन दिनोंको वास।
देखे दृश्य घिनावनो, तो उन होय उदास ॥२०॥

रोगादिक पीडित रहे, महा कष्ट जो होय।
तय हू मूरख जीव यह, धर्म न चिन्ते कोय ॥२१॥

मरन समय विललात है, कोऊ लेउ बचाय।
जान ज्यों त्यों जानिये, जोर न कछू बसाय ॥२२॥

फिर नर भव मिलिवो नहीं, किये हु कोटि उपाय।
ताते वेग हि चेतहू, अहो जगतके राय ॥२३॥

भैयाकी यह वीनती, चेतन चित हि विचार।
ज्ञानदर्श चारित्रमें, आपो लेहु निहार ॥२४॥

एक सात पचास के, संवत्सर सुखकार।
पक्ष शुक्ल तिथि धर्मकी, जै जै निशि पतिवार ॥२५॥

—ब्रह्म विलास.

उपर लिखित पद्योंमी एकान्त स्थानमें शान्तिपूर्वक अर्थका विचार करके मनन करें, यही निवेदन है।

शुद्धात्माओंका दास,

मगनमल कोचेटा.

परमात्म-प्रकाश भाषा

प्रकाशकः—

श्री आत्म जागृति कार्यालय,

जैन गुरुकुल-ब्यावर।

आ० जा० पुष्प १

परमात्म प्रकाश-भाषा

भँवाल निवासी श्रीमान् सेठ गोदड़मलजी झामड़ ने
अपनी पुत्री के लग्न के हर्ष में प्रकाशित कराई
१००० प्रति

प्रकाशक

मगनमल कोचेटा,

कन्हैया लाल लोढा, एम०
मन्त्री-~~श्री~~-८, नई अनाज मण्डी
चाँदपोल जयपुर-१

आत्म जागृति कार्यालय

जैन गुरुकुल ब्यावर

———-———

मुद्रकः—**पद्मसिंह जैन,**

जैन प्रेस, जौहरी बाजार आगरा में मुद्रित किया।

प्रति २००० | सं० १९८६ | सन् १९२९ ई० | मूल्य दो आना | ज्ञानप्रचारार्थ

प्रकाशक—

मंत्री—

आत्म जागृति कार्यालय,

दि० जैन गुरुकुल

[ब्यावर राजपूताना]

मुद्रक—

पद्मसिंह जैन

श्रीमद्जैन शास्त्रोद्धार प्रिंटिंग प्रेस,

आगरा [संयुक्तप्रान्त]

"जो एगं जाणइ सो सव्वं जाणइ जो सव्वं जाणइ सो एगं जाणइ" (श्री आचाराङ्ग सूत्र)

जो एक आत्म स्वरूप को सर्व अपेक्षा से जानता है वह सब पदार्थों के स्वरूप को यथार्थ जानता है और जो सब पदार्थों को यथार्थ जानता है वह एक आत्म स्वरूप को जानता है कारण सब पदार्थों के जानने का आशय एक आत्मस्वरूप को शुद्ध जानना ही है।

आत्मा शुद्ध निश्चय नय से परमात्मा के तुल्य है कारण अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन अनन्त सुख और अनन्त वीर्य ये चार गुण शक्ति रूप सब जीव में बिराजमान हैं परन्तु अशुद्ध निश्चय नय से ये गुण दूषित हो कर अल्प या मिथ्या ज्ञान दर्शन, इन्द्रिय जन्य सुख दुःख और मन्द वीर्य या कुवीर्य प्रकट हुये हैं। इन दोषों का नाश परमात्मा (शुद्धात्मा) की भावना से होता है जैसे कहा है—

परमातम सो आतमा और न दूजो कोय।
परमातम को ध्यावतें यह परमातम होय॥

इसलिये हरएक आत्म कल्याण करने की इच्छा वाले भव्य जीव को इस ग्रन्थ का हमेशा बांचन मनन करना चाहिये। नित्य

नियम में नवीन ज्ञान करना व कुछ भावना चिन्तवन में ऐसे ग्रन्थ पढ़ना परम हितकर है।

इस ग्रन्थ के मूल प्राकृत गाथाओ के कर्ता श्रीमद् योगीन्द्र देवाचार्य हैं और इस पर संस्कृत टीका व भाषा टीका भी अनेक उपकारी पुरुषों ने की है और एक सुन्दर छोटी भाषा टीका बाबू सूरजभानुजी वकील ने की है यह ग्रन्थ कुछ विशेष मूल्य से मिलते हैं जिससे इनका प्रचार बहुत अल्प हुआ है हमने केवल इस अपूर्व वस्तु का सब कोई सहर्ष लाभ ले इस पवित्र आशय से बाबूजी का भाषान्तर मात्र संग्रह किया है केवल जैन धर्म की भिन्न भिन्न सम्प्रदायों की जो परस्पर किंचित् भिन्न मान्यताए हैं ऐसे विषय को छोड़ दिया है और उसे फुटनोट में लिख दिया है इसमें जिनाज्ञा के विरुद्ध या न्याय से विरुद्ध जो कुछ हुआ हो उसके लिये क्षमा चाहते हैं।

हमारा अनुभव है कि अपूर्व अमृत वचन का संग्रह सारे ग्रन्थ में होते हुए भी वर्त्तमान सम्प्रदाय ममत्व वाले महानुभाव किंचित् स्वमान्यता से विरुद्ध विषय आते ही सारे ग्रन्थ का लाभ छोड़ देते हैं, उनके लाभार्थ यह प्रयत्न किया है।

इस ग्रन्थ मे शुद्ध निश्चय नय से प्रायः आत्मा का स्वरूप है अतः कृपया कोई पाठक व्यवहार का त्याग न करें व संग्राहक क्रिया का अनुरागी नहीं है ऐसे विचार भी न करें। कारण व्यवहार और निश्चय दोनों के विना कभी मोक्ष [दुःखो का छुटकारा] नहीं होगा। यह वीतराग वचन है और श्रद्धेय हैं। व्यवहार निश्चय दोनों नयों का ज्ञान करने की शिक्षा देते फ़रमाते हैं।

गाथा—

जइ जिणमयं पठिज्जह तो मा ववगहार णिच्छयं मुञ्च ।
एकेण विणा छिज्जइ, तित्थं अण्णेण तच्चं च ॥

अर्थात् जो तू जिनमत मे प्रवर्तन करता है, तो व्यवहार निश्चय का मत छोड़ ! जो निश्चय नय का पक्षपाती होकर व्यवहार को छोड़ देगा तो रत्नत्रय स्वरूप धर्म तीर्थ का अभाव हो जावेगा। और जो व्यवहार का पक्षपाती होकर निश्चय को छोड़ेगा तो शुद्ध तत्व स्वरूप का अनुभव होना दुस्तर है। इसलिये पहिले व्यवहार निश्चय को अच्छी तरह जान कर पश्चात् यथायोग्य अङ्गीकार करना, पक्षपाती न होना, यह उत्तम श्रोता का लक्षण है। यह ग्रन्थ शुद्ध आत्म स्वरूप को बताने वाला है। जैनधर्म में श्रेष्ठता, स्याद्वाद अर्थात् व्यवहार और निश्चय दोनों नयों से हर एक स्वरूप के समझने को है। आज व्यवहार नय के पोषक अनेक ग्रन्थ हैं। और इसके फल स्वरूप बाह्य क्रिया, व्रत, नियम, तप आदि प्रवृति भी कुछ अंश में दिखाई देती है परन्तु निश्चय नय के पोषक ग्रन्थों की कमी होने से राग द्वेष मोह आदि सच्चे शत्रुओं का जोर है यदि दोनों नयों का अभ्यास करके बाह्य क्रिया व आभ्यन्तर कषाय त्याग आदि गुणो की वृद्धि की जावे तो शीघ्र जैन धर्म की ज्योति विश्व माननीय होव।

संग्राहक—

स्याद्वाद प्रेमी

॥ ॐ ॥

॥ श्री वीतरागायनमः ॥

परमात्म प्रकाश भाषा ।

(१) जो ध्यानरूपी अग्नि से कर्म कलंक को जलाकर नित्य निरंजन (कर्म मल से रहित) ज्ञान स्वरूप हुवे हैं ऐसे सिद्ध परमातमा को नमस्कार होवे ।

(२) जो अनन्त जीव आगामी काल में रागादि विकल्प रहित परम समाधि को पाकर शिवमयी, निरूपम और ज्ञानमयी सिद्ध होवेंगे उनको नमस्कार करता हूँ ।

(३) कर्मरूप ईंधन को जलाकर जो †श्री सिद्ध भगवान् इस समय ‡विदेह क्षेत्र मे बिराजमान् हैं उनको मैं भक्ति सहित नमस्कार करता हूँ ।

(४) उन सिद्धो को भी नमस्कार करता हूँ जो निर्वाण भूमि में अर्थात् मोक्ष स्थान में वसते हैं, तीर्थंकर अवस्था में जीवों को ज्ञान देने के कारण हमारे तीनों भव के गुरु हैं, परन्तु वे संसार मे नहीं पड़ते हैं ।

†अरिहन्त भगवान् को भी सशरीरी सिद्ध कहे हैं । ‡महाविदेह क्षेत्र ।

(५) उन सिद्धों को नमस्कार करता हूँ जो अपने आत्म-स्वरूप में ही वसते हैं और लोक अलोक के समस्त पदार्थों को निर्मल प्रत्यक्ष ज्ञान से देखते हैं।

(६) श्री जिनेंद्र देव को भक्ति भाव से नमस्कार करता हूं. केवल दर्शन, केवलज्ञान, अनन्तसुख और अनन्त वीरज से मंडित हैं और जिन्होंने जीव अजीव आदिक पदार्थों के स्वरूप का प्रकाश किया है।

(७) जिन मुनि महाराजों ने परमानन्द के देने वाली परम समाधि को लगाकर परम पद प्राप्त किया है उन तीनो को मेरा नमस्कार हो अर्थात् आचार्य, उपाध्याय और साधु को।

(८) अपने मन को निर्मल करके और पंच परमेष्टी को नमस्कार करके श्री जोगेन्द्राचार्य से प्रभाकर भट्ट विनती करता है।

(९) हे स्वामी! इस संसार मे भ्रमते हुवे मुझको अनन्त काल वीते परन्तु मैंने सुख कुछ भी न पाया महान् दुःख ही उठाया।

(१०) जो चार गति के दुःखो में ताप्तायमान हो रहा है और चार गति के दुःखों को विनाश कर परम पद प्राप्त करता है, हे स्वामी उसका वर्णन करो।

(११) [आचार्य कहते हैं] हे प्रभाकर! तू निश्चय के साथ सुन। मै भक्ति का भाव मन में रखकर पंच परमेष्टी को नमस्कार करके तीन प्रकार की आत्मा का वर्णन करता हूँ।

(१२) आत्मा को तीन प्रकार जानकर प्रथम वहिरात्म भाव

को छोड़ और अन्तरात्मा होकर केवल ज्ञानपूर्ण परमात्मा का ध्यान कर।

(१३) बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा तीन प्रकार की आत्मा हैं जो अपने शरीर को ही आपा मानता है वह मूर्ख अर्थात् बहिरात्मा है।

(१४) जो आत्मा को देह से भिन्न शुद्ध ज्ञान स्वरूप परम समाधि में स्थित जानता है वह अन्तर आत्मा है।

(१५) जो अपने आपे को प्राप्त हुवा है, ज्ञानमयी है, कर्मों से रहित है उसको तू अपने मन को तीन प्रकार की शल्य से रहित शुद्ध करके परमात्मा जान।

(१६) तीन लोक जिसकी वंदना करता है हरिहर आदिक जिसका ध्यान करते हैं वह सिद्ध भगवान परमात्मा है।

(१७) नित्य है, निरंजन है, अर्थात् रागादिक मल से रहित है, ज्ञानस्वरूप है, परमानन्द स्वरूप है जो ऐसा है वह ही शांति है, शिव है, ऐसा जानकर तू अपने स्वरूप को अनुभव कर।

(१८) जो अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता है और पर वस्तु के भाव को नहीं ग्रहण करता है और निज को और पर को अर्थात् तीन-लोक के त्रिकालवर्ती सर्व पदार्थों को जानता है वह ही शाँति शिव है।

(१९) जिसमे वरण, गंध, रस, शब्द, स्पर्शन नहीं है अर्थात् देहधारी नही है, जिसका जन्म नहीं, मरण नहीं वही निरंजन है।

(२०) जिसको क्रोध नही, मोह नही, मद नहीं, माया नहीं,

और मान नहीं है जिसमें ध्यान और ध्यान स्थान भी नहीं है उसही को तू निरंजन जान।

(२१) जिसके पुण्य पाप नहीं है, हर्ष विषाद नहीं हैं जिसमें किसी प्रकार का भी दोष नहीं है ऐसे जीव को निरंजन अनुभव कर।

(२२) धारणा, ध्येय, जंत्र, मंत्र, मंडल और मुद्रादिक जिसमें नहीं है वह ही देव अनन्त है।

(२३) यह परमात्मा वेद शास्त्र और इन्द्रियों से नहीं जाना जाता है वह निर्मल ध्यान से हीं जाना जा सकता है। केनोपनिषद् प्रथम खंड - ५

(२४) † केवल दर्शन, केवल ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीरज रूप ही को तू परमात्मा जान।

(२५) जो इस प्रकार के लक्षणों वाला है और तीन लोक जिसकी वंदना करता है जो सर्वोत्कृष्ट है शरीर रहित है, वह परमात्मा लोक के अन्त पर तिष्टै हैं।

(२६) जैसा निर्मल और ज्ञानमयी परमात्मा सिद्ध अवस्था में है वह ही परमब्रह्म संसार अवस्था में रहता है, अर्थात् यह देहधारी संसारी जीव ही सिद्ध पद को प्राप्त होता है।

(२७) जिस परमात्मा के ध्यान से पूर्व उपार्जित कर्म नाश होते हैं वह परम उत्कृष्ट जानने योग्य तेरी देह ही में वसता है अन्य कहीं नहीं है।

(२८) जिसको इन्द्रियों का सुख दुःख नहीं है और जिसमे

---

† केवल = शुद्ध [केवल मिति शुद्धम्—आलाप पद्धति ग्रन्थ]

मन का व्यापार अर्थात् संकल्प विकल्प नहीं है उसही को तू आत्मा जान अन्य जो कुछ है वह पर है उसको तू छोड़दे।

(२९) देह के साथ एकमेक होकर जो देह में वसता है और नय कथन से भेदाभेद रूप है अर्थात् देह से जुदा है, हे जीव तू उसको आत्मा जान अन्य जो अनेक पदार्थ हैं उनसे क्या प्रयोजन है।

(३०) जीव और अजीव को तू एक मत कर यह दोनों अपने अपने लक्षण से जुदे जुदे हैं जो पर हैं उनको पर जान और आत्मा को आत्मा जान।

(३१) मन रहित है इन्द्रिय रहित है ज्ञानमयी है मूर्ति रहित है चेतन मात्र है इन्द्रियों से नहीं जाना जा सक्ता है निश्चय से आत्मा के यह लक्षण हैं।

(३२) संसार शरीर भोग मे जो मन लगा हुवा था उस मनको जो आत्मीक ध्यान मे लगाता है उसकी संसार के बढ़ाने वाली वेल टूट जाती है अर्थात् संसार परिभ्रमण बन्द होजाता है।

(३३) संसारी जीव के शरीर रूपी चैत्यालय में जो बसता है वह ही देव है अनादि अनन्त है उसही को केवल ज्ञान की शक्ति है उसही को परमात्मा कहते हैं।

(३४) जो देह में रहता हुवा भी देह को नहीं छूता है अर्थात् देह रूप नहीं हो जाता है और देह भी उस रूप नहीं हो जाती है वह ही परमात्मा है।

[३५] समता भाव अवस्था में अर्थात् सुख दुःख जीवन मरण शत्रु मित्र आदिक को बराबर समझ कर निर्विकल्प समाधि

में स्थिर होकर जिसको परम आनन्द प्राप्त होता है वह ही परमात्मा है।

(३६) यद्यपि कर्मों से बँधा हुवा शरीर में वसता है परन्तु कभी भी शरीर रूप नहीं हो जाता है वही परमात्मा है उसको तू जान।

(३७) जो निश्चय नय से अर्थात् असली स्वभाव की अपेक्षा शरीर रहित और कर्म रहित है अर्थात् शरीर में रहना और कर्मबंधन में पड़ना जिसका असली स्वभाव नही है (मूढ़ मिथ्या दृष्टि लोग जिसको असली स्वभाव समझते हैं) वही परमात्मा है।

(३८) जिसके अनन्तानन्त-ज्ञान में तीन लोक ऐसा है जैसे अनन्त आकाश में एक नक्षत्र अर्थात् तारा वही ही परमात्मा है।

(३९) श्री मुनि मोक्ष प्राप्त होने के हेतु जिस ज्ञानमयी आत्मा का ध्यान करते हैं अर्थात् अपनी आत्मा का ध्यान करते हैं वह ही आत्मा परमात्मा है और देव है।

(४०) जो ज्ञानावरणादिक कर्मों का निमित्त पाकर अर्थात् कर्मों के वश होकर त्रस स्थावर स्त्री पुरुष आदिक अनेक रूप संसार को उपजावै है अर्थात् संसार में अनेक पर्य्याय धारण करता है उसही को तू परमात्मा जान।

(४१) जिसके केवल ज्ञान में सारा जगत् वसता है अर्थात् सारा जगत् जिसको प्रतिभासता है और वह जगत् को जानने वाला जगत् में वसै है परन्तु वह जानने वाला जगत रूप नहीं हो जाता है वह ही परमात्मा है।

भावार्थ—जैसे किसी वस्तु को देखकर कह देते हैं कि वह

वस्तु हमारी आंख में है और यह भी कहते हैं कि हमारी आंख उस वस्तु में है परन्तु आंख अलग है और देखने योग्य वस्तु अलग है इसही प्रकार संसार के सब पदार्थों को देखने वाला जीव है।

(४२) शरीर के अन्दर जो आत्मा बसता है उसको परम समाधि के भाव से रहित हरिहर आदिक नहीं पहचान सकते हैं, वह ही परमात्मा है।

(४३) जो निजभाव से संयुक्त और परभाव से रहित है उसको परभाव से रहित और निजभाव से संयुक्त होकर श्रीजिनेन्द्र देव ने देह में देखा है उसको तू परमात्मा जान।

(४४) जिसके देह में बसने से इन्द्रियों वाला ग्राम बसता है और जिसके निकल जाने से उजड़ जाता है उसको तू परमात्मा जान। [भावार्थ] जब तक जीव देह में रहता है तब ही तक आंख नाक आदिक इन्द्रियां अपना अपना काम करती हैं और जब जीव निकल जाता है तब कोई भी इन्द्रिय नही रहती है।

(४५) जो पाँचों इन्द्रियों के विषय को जानता है और इन्द्रियां इन्द्रियों के विषय को नही जानती हैं उसही को तू परमात्मा जान। [भावार्थ] पांचों इन्द्रियां आंख, नाक, कान, जिह्वा और त्वचा यह सब जड़ हैं इनमें जानने की शक्ति नही है संसारी जीव इन इन्द्रियों के द्वारा इस प्रकार जानता है जैसा कि जिसको आंख कमजोर हो गई है वह ऐनक (चश्मे) के द्वारा देखता है परन्तु ऐनक में देखने की शक्ति नहीं है वह देखने जानने वाला जीव है वह ही परमात्मा है।

(४६) जिसका असली स्वभाव कर्मों के बंध से और संसार से अर्थात् अनेक रूप घूमने से रहित है। [भावार्थ] कर्म बंध और संसार में घूमना जिसका असली स्वभाव नहीं है वह पर-मात्मा है उसका तू ध्यान कर और व्यवहार को त्यागने योग्य समझ।

(४७) जैसे किसी मकान में कोई वेल वोई जावै तो वह उग कर और मकान के अन्दर फैल जावैगी परन्तु यदि मकान वड़ा होता तो और भी लंबी फैलती इसही प्रकार केवल ज्ञान सर्व पदार्थों को जानता है यदि इससे अधिक पदार्थ होते तो उनको भी जानता मोक्ष पाने पर जिसमें ऐसा ज्ञान है वह ही परमात्मा है।

(४८) कर्म सुख दुःख रूप अपने अपने कारज को उत्पन्न करते हैं परन्तु जीव के स्वभाव को नाश नहीं कर सक्ते हैं और जीव में कोई नवीन स्वभाव उत्पन्न नहीं कर सक्ते हैं वह जीव परमात्मा है उसको तू अनुभव कर।

(४९) कर्मों से वंधा हुआ भी जो कर्मरूप नहीं होता है और कर्म भी जिस रूप नहीं होजाते हैं वही परमात्मा है उसको तू अनुभव कर। [भावार्थ] कर्म जड़ है जीव चैतन्य है, जड़ वदल कर चेतन नहीं होता और चेतन वदल कर जड़ नहीं हो सक्ता है, कर्म जीव के स्वरूप से भिन्न ही है।

(५०] कोई जीव को सर्व व्यापी कहते हैं कोई जीव को जड़ वताते हैं कोई जीव को देह परिमाण कहते हैं और कोई जीव को शून्य कहते हैं।

(५१) आत्मा सर्व व्यापी भी है, जड़ भी है, देह परिमाण भी है और शून्य भी है।

(५२) जीवात्मा कर्मों से रहित होकर केवल ज्ञान के द्वारा लोक अलोक अर्थात् सर्व को जानता है इस हेतु सर्वगत अर्थात् सर्व व्यापी कहा है।

(५३) जब जीव को अतिन्द्रिय ज्ञान होता है तब इन्द्रिय-ज्ञान कुछ नहीं रहता है इस कारण उस समय इन्द्रिय ज्ञान से रहित होता है इसही हेतु जड़ कहा है। [भावार्थ] इन्द्रियां जड़ हैं व्यवहार में इन्द्रियों के ही द्वारा ज्ञान होता है परन्तु आत्मिक परम शक्ति के प्रकट होने पर इन्द्रियों से भिन्न अतिन्द्रिय ज्ञान प्राप्त होने की अवस्था में इन्द्रियां जड़रूप रह जाती हैं।

(५४) कर्मरूप कारण के अभाव से सिद्ध जीव घटता बढ़ता नहीं है जिस शरीर से मुक्ति होती है उस शरीर के परिमाण रहता है ऐसा श्री जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

(५५) सिद्ध जीव में आठ कर्मों से वा इनके भेदाभेद मे से कोई भी कर्म नहीं है और १८ दोषो में से कोई भी दोष नहीं है इस कारण जोव को शून्य भी कहा है।

(५६) आत्मा को न किसी ने उपजाया है और न आत्मा ने किसी द्रव्य को उपजाया है, यह आत्मा द्रव्य सुभाव कर नित्य है परन्तु पर्याय की अपेक्षा उपजता भी है और विनाश भी होता है अर्थात् आत्मद्रव्य तो अनादि नित्य है न पैदा होता है और न विनाश होता है परन्तु पर्याय अर्थात् अवस्था सदा बदलती रहती है अर्थात पर्याय उत्पन्न भी होती है और विनाश भी होती है।

(५७) द्रव्य उसको जानो जिसमें गुण और पर्याय हों जो सहभावी हो अर्थात् द्रव्य के साथ सदा रहे अर्थात् द्रव्य का सुभाव हो उसको गुण कहते हैं और जो क्रमवर्ती हो अर्थात् कभी कोई दशा हो कभी कोई उसको पर्याय* कहते हैं ।

(५८) आत्मा को द्रव्य जान, दर्शन और ज्ञान उसका गुण जान और चतुरगति परिभ्रमण रूप परिणामन को कर्मकृत विभाव पर्याय जान।

(५९) जीव और कर्म दोनों अनादि हैं न तो जीव ने कर्मों को पैदा किया है और न कर्मों ने जीव को पैदा किया है दोनों वस्तु अनादि ही से चली आती हैं आदि कोई नहीं है।

(६०) यह व्यवहारी जीव अपने किये कर्मों के निमित्त से अनेक भाव रूप परिणमता है अर्थात् पुण्य रूप और पाप रूप होता है।

(६१) ये कर्म आठ प्रकार के हैं जिनसे ढका जाकर जीव अपने आत्मिक स्वभाव को नहीं पाता है।

(६२) विषय कषाय और मोह के कारण जो पुद्गल परमाणु जीव के प्रदेशों से लगते हैं श्री जिनेन्द्र भगवान ने उनहीं का कर्म कहा है।

(६३) पाँच इन्द्रिय, मन, समस्त विभाव परिणाम और चार गति सम्बन्धी दुःख यह सब जीव को कर्मों ने उपजाये हैं।

(६४) जीवों को सर्व प्रकार के सुख दुःख कर्मों ने ही उप-

* पर्याय = हालत, अवस्था

जाये हैं, परन्तु निश्चय नय से अर्थात् असली स्वभाव से तो जीवात्मा देखने और जानने वाला ही है।

(६५) हे जीव बंध और मोक्ष को कर्मों ने ही उपजाये हैं, परन्तु निश्चय नय से जीव बंध और मोक्ष का पैदा करने वाला नहीं है। [भावार्थ] यदि कर्म न होते तो बंध और मोक्ष यह दो नाम ही न होते कर्मों से ही बंध होता है और कर्मों ही के दूर होने से मोक्ष अर्थात् बंधन से छूटना होता है जीव का असली स्वभाव न बंधन में पड़ना है और न छूटना है बंधना और छूटना यह दोनों बात कर्मों ही के कारण पैदा होती हैं।

(६६) पांगुले मनुष्य की समान जीवात्मा अपने आप न कहीं आता है और न कहीं जाता है, कर्म ही इस जीव को तीन लोक में लिये फिरते हैं। कानजी की व्याख्या के विरुद्ध

(६७) आत्मा आत्मा ही है और पर पदार्थ पर ही है न तो आत्मा अन्य कोई पदार्थ बन सक्ती है और न अन्य कोई पदार्थ आत्मा बन सक्ता है ऐसा जोगीश्वर कहते हैं।

(६८) निश्चय नय से अर्थात् असली स्वभाव से जीवात्मा न पैदा होता है और न मरता है न बंधरूप है और न मुक्तिरूप है श्री जिनेन्द्र ऐसा कहते हैं।

(६९-७०) निश्चय नय से पैदा होना, जरा अर्थात् बुढ़ापा, मरना, रोग, लिंग अर्थात् स्त्री रूप वा पुरुषरूप होना, और वर्ण आदिक जीव में नहीं है यह सब बातें देह ही में हैं देह ही उत्पन्न होता है देह ही बूढ़ा होता है देह ही का मरण होता है। देह ही में विचित्र रंग है देह ही में रोग है देह ही में स्त्री पुरुष आदिक लिंग हैं

(७१) हे जीव तू देह में बुढ़ापा और मरना देखकर भय मत कर, अजर अमर जो परब्रह्म है उसही को तू अपनी आत्मा जान चाहे शरीर का छेद हो भेद हो वा क्षय हो अर्थात् शरीर चाहे कटे टूटै वा नाश हो जावे,

(७२) तू उसकी तरफ कुछ ध्यान मत दे तू तो अपनी शुद्ध आत्मा का अनुभव कर जिससे तू संसार समुद्र से पार हो जावे।

(७३) अशुद्ध चेतनारूप कर्मों से उत्पन्न हुवे राग द्वेष आदिक भाव और शरीर आदिक अचेतन द्रव्य यह सब शुद्ध आत्मा से भिन्न हैं यह बात सब जानते हैं।

(७४) ज्ञानमयी जो आत्मा है उससे जो भिन्न भाव हैं उन सबको छोड़कर तू अपनी शुद्ध आत्मा का अनुभव कर।

(७५) आठ कर्मों और १८ दोषों से रहित यह जीव दर्शन ज्ञान, चारित्र रूप है तू ऐसा अनुभव कर।

(७६) जो जीव आत्मा को आत्मा मानता है वह सम्यक् दृष्टि है, सम्यक् दृष्टी ही कर्मों के बन्धन से छूटता है।

(७७) जो जीव पर्याय (सकर्म अवस्था) में रागी होकर पर्वर्त्तो है वह मिथ्यादृष्टि है वह ही नाना प्रकार के कर्मों का बंध करके संसार में रुलता फिरता है।

(७८) कर्म बहुत जोरावर और चिकने हैं मेरु की समान बड़े हैं कर्म ही ज्ञानवान् जीवात्मा को कुमार्ग में डालते हैं।

(७९) मिथ्यात्वरूप परिणमता हुआ जीव तत्वों को अन्यथा

रूप जानता है और कर्मों के द्वारा उत्पन्न हुवे भाव को ही आपा*
मानता है ।

(८०) मैं गोरा हूँ, मैं सावला हूँ वा नाना प्रकार के वर्णवाला हूँ मैं मोटा हूँ मैं पतला हूँ इत्यादिक जिनके परिणाम हैं उनको मिथ्यादृष्टि जानना ।

(८१) मैं ब्राह्मण हूँ मैं वैश्य हूँ मै क्षत्री हूं अथवा शूद्रादिक मैं पुरुष हूँ वा स्त्री हूँ वा नपुंसक हूं यह परिणाम मिथ्यादृष्टि के होते हैं ।

(८२) मैं †जवान हूँ मै बूढ़ा हूँ मैं रूपवान् हूँ मैं शूरमा हूं, मैं पण्डित हूँ मैं उत्तम हूँ मैं दिगम्बर हूँ बोधगुरु हूँ वा श्वेताम्बर साधू हूँ जिनके ऐसे परिणाम हैं वह मिथ्यादृष्टि जानने ।

(८३) माता पिता पति स्त्री पुत्र मित्र धन दौलत यह सब माया जाल हैं इन सबको मिथ्यादृष्टि जीव अपने मानता है ।

(८४) इन्द्रियों के विषय जो दुःख के कारण हैं मिथ्यादृष्टि उन्हीं को सुख का कारण जानकर उनमे रमता है तो वह अन्य कौनसा अकारज न करैगा ।

(८५) काल लब्धि को पाकर ज्यों ज्यों साधु के मोह का नाश होता है त्यों त्यों इस जीव को शुद्ध आत्मरूप सम्यक् दर्शन की प्राप्ति होती है और निश्चयरूप आत्मा का वर्णन करने लगता है।

---

† एकान्त ऐसा मानने वाला मिथ्यात्वी है -कारण निश्चय नय से आतमा में रूप रस गंध स्पर्श सम्प्रदाय जीवायोनी, गुणस्थान नही हैं ।

* आपा = अपना पन

(८६) आत्मा न गोरा है न काला है न सूक्ष्म है न स्थूल है आत्मा ज्ञान स्वरूप है यह बात ज्ञानी ही जानता है।

(८७) आत्मा न ब्राह्मण है न वैश्य है न क्षत्री है न शूद्र है न पुरुष है न स्त्री है न नपुंसक है आत्मा ज्ञानस्वरूप ही है और ज्ञान से सब कुछ जानता है।

(८८) आत्मा यति गुरु संन्यासी उदासी दंडी आदिक भेष धारी भी नहीं है आत्मा ज्ञान स्वरूप ही है ज्ञानी ही आत्मा को पहचानता है।

(८९) आत्मा न गुरु है न शिष्य है न राजा है न रंक है न शूरवीर है न ऊंच है न नीच है आत्मा ज्ञानस्वरूप है उसको ज्ञानी ही जानता है।

(९०) आत्मा न मनुष्य है न देव है न तिर्यंच है न नारकी है आत्मा ज्ञान स्वरूप है उसको ज्ञानी ही जानता है।

(९१) आत्मा न पण्डित है न मूर्ख है न विभूतिवान है न दरिद्री है न बूढ़ा है न बालक है न जवान है यह सर्व प्रकार की अवस्था कर्मों ही से उत्पन्न होती है।

(९२) आत्मा न पुण्य पदार्थ है न पाप पदार्थ है आत्मा काल द्रव्य भी नहीं है आकाश भी नहीं है धर्म वा अधर्म द्रव्य भी नहीं है शरीर आदिक पुद्गल द्रव्य भी नहीं है आत्मा चैतन्य स्वरूप है और अपने चेतना स्वभाव को छोड़कर अन्य नहीं होता है।

(९३) आत्मा संयम शील तप दर्शन, ज्ञानरूप है और अविनाशी मोक्ष स्वरूप है आत्मा ही आत्मा को जानता है।

(९४) हे जीव ! आत्मा से भिन्न अन्य कोई दर्शन, ज्ञान और चारित्र नहीं है रत्नत्रय के समूह को ही आत्मा जान।

(९५) हे जीव शुद्ध आत्मा से भिन्न अन्य कोई तीर्थ मत मान कोई गुरुमत सेव और कोई देव मत जान तू निर्मल आत्मा को ही अनुभव कर।

(९६) आत्मा एक मात्र [निखालिस] सम्यग्दर्शन स्वरूप है तीन लोक में सारभूत पदार्थ जो आत्मा है वह ही ध्यावने योग्य है। अन्य सब व्यवहार है अर्थात् आत्मध्यान के सिवाय धर्म के अन्य सब साधन व्यवहार रूप ही है।

(९७) तू अपनी निर्मल आत्मा का ध्यान कर जिसके ध्यान मे एक अन्तरमुहूर्त स्थिर होने से मुक्ति प्राप्त हो जाती है अन्य बहुत प्रकार के साधनों से क्या काम।

(९८) जिसके मनमें निर्मल अपना आत्मा नहीं बसता है उसको शास्त्र पुराण और तपश्चरण मोक्ष नहीं दे सक्ते हैं।

(९९) हे योगी अर्थात् हे साधु जो आत्मा को जानता है वह सब कुछ जानता है क्योंकि आत्मा के ज्ञान मे समस्त जगत् झलक रहा है।

(१००) जो जीव आत्म स्वभाव में तिष्ठता है अर्थात् लीन है उसको शीघ्र ही आत्मा दिखाई दे जाता है अर्थात् केवल ज्ञान प्राप्त हो जाता है और लोकालोक दिखाई देने लगता है।

(१०१) जैसे आकाश मे सूरज आपको और पर पदार्थों को प्रकाश करता है इसही प्रकार आत्मा भो अपने आपको और लोकालोक को देखती है इसमें संशय मत कर यह वस्तुस्भाव है।

(१०२) जैसे निर्मल जलमें तारे प्रतिविंवित होते हैं ऐसे ही आत्मा के निर्मल स्वभाव में लोकालोक प्रतिविंवित होते हैं।

(१०३) जिस आत्मा के जानने से अपने आपको और अन्य सर्व पदार्थों को जान सकते हैं उसहो शुद्ध आत्माको तू अपने ज्ञान के वलसे जान।

(१०४) [प्रश्न] हे स्वामी मुझको यह ज्ञान वताओ जिस ज्ञान से एक क्षणमें शुद्धात्माको जान जावें और जिस ज्ञान के सिवाय और कोई वस्तु कार्यकारी नही है।

(१०५) उत्तर—आत्मा को तू ज्ञानमयी मान वह आत्मा आपहो अपने आपको जानता है निश्चय नय से अर्थात् असलि-यत में उस आत्मा के प्रदेश लोक के वरावर हैं और व्यवहार मे शरीर के वरावर हैं और ज्ञान की अपेक्षा लोकालोक के वरावर हैं।

(१०६) आत्मा से भिन्न जो पदार्थ हैं वह ज्ञान नहीं है इस कारण तू सर्व पदार्थों को छोड़कर निश्चय के साथ आत्मा ही को जान।

(१०७) आत्मा ज्ञान में आने योग्य है ज्ञान से ही आत्मा जानी जाती है इस कारण तू और सव वात छोड़कर आत्मा को ज्ञान के द्वारा जान।

(१०८) ज्ञानी जीव जितने काल तक ज्ञानमयी आत्मा को नहीं जानता है उतने काल तक अज्ञानी हुआ परब्रह्म को नहीं पाता है अर्थात् जब तक रागद्वेष में फँसा रहता है तब तक परम ब्रह्म अर्थात् परमात्मा (निज शुद्ध स्वरूप) को नहीं पाता है।

(१०९) आत्मा के जानने से परलोक सम्बन्धी परमात्मा जाना जाता है वह ही परमब्रह्म है आत्मा ही के देखने और जानने से वह देखा अर्थात् जाना जाता है। [भावार्थ]—आत्मा ही परमब्रह्म परमात्मा है। [परम=शुद्ध, ब्रह्म=आत्मा]

(११०) मुनीश्वर और हरिहरादिक के मन में जो देव बसता है वह उत्कृष्ट है ज्ञानमयी है उसही को †परलोक कहते हैं।

(१११) जिसके मन में वह बसता है जिसका परलोक कहते हैं अर्थात शुद्ध आत्मा, [भावार्थ]--परमात्मा का जिसको ध्यान है वह अवश्य परमात्म पद को प्राप्त होगा, क्योंकि जैसी मति वैसी ही गति।

(११२) जैसी तेरी बुद्धि है मरकर तैसी ही गति को तू प्राप्त होगा इस कारण परमब्रह्म से बुद्धि को हटाकर अन्य किसी द्रव्य में अपनी बुद्धि को मत लगा अर्थात् अन्य सर्व पदार्थों से राग-द्वेष को छोड़कर शुद्ध आत्मा का ध्यान कर।

(११३) जो आत्मा से पर पदार्थ हैं अचेतन हैं उन्हीं को तू परद्रव्य जान, वह पांच हैं पुद्गल धर्म, अधर्म आकाश और काल।

† परलोक अर्थात शुद्ध आत्मा।

(११४) जो कोई सम्यकदृष्टि एक क्षण अर्थात् बहुत थोड़े काल भी आत्मा में अनुराग करता है लीन होता है वह बहुत कर्मों का नाश करता है जैसे अग्नि का एक कण ईंधन के बहुत बड़े समूह को शीघ्र ही भस्म कर देता है।

(११५) हे जीव तू समस्त बखेड़ा अर्थात् चिन्ता को त्याग कर निश्चिन्त हो जा और मन को परमात्म स्वरूप में लगाकर निरंजन देव अर्थात् शुद्ध निर्मल आत्मा को देख।

(११६) अनन्त देवो को छोड़कर ध्यान के द्वारा शिव अर्थात् परम आत्मा को देखने से जो परम आनन्द प्राप्त होता है वह [1]आनन्द तीन लोक में अन्य कहीं भी नहीं है। (कारण यह निजी सुख है)

(११७) [‡]अपनी शुद्ध आत्मा के ध्यान से जो आनन्द साधु को मिलता है वह आनन्द इन्द्र को भी प्राप्त नहीं है जो करोड़ो देवांगनाओ से रमता है।

---

[1] आत्मिक सुख में पांच विशेष गुण है स्वाधीन, बाधा रहित, अविनाशी सुख से प्राप्त होने वाला, अबंध और पर द्रव्य के निमित्त से होने वाले कल्पित सुख मे इससे विपरीत पांच दोष है।

[‡] दोहा—स्वर्ग विषैं इन्द्रादिको, इन्द्रिय सुख भरपूर। सोउ खेद बाधा सहित सहजानन्दतैं दूर ॥ १ ॥ तातैं इन्द्रिय जनित सुख हेय रूप पहिचान। ज्ञानानन्द अनच्छ सुख करो सुधारस पान ॥ २ ॥ (हेय = छोड़ने योग्य, अनच्छ = अतिंद्रिय)

(११८) अपनी निज आत्मा के देखने से जो अनन्त सुख श्री जिनेन्द्र को होता है वही सुख वीतरागी पुरुष शिवसंत अर्थात अपना शुद्ध आत्मा के अनुभव से पाता है।

(११९) शुद्ध निर्मल मनमे ही शिवसंत अर्थात् शुद्ध आत्मा नज़र आता है जैसे बादलों से रहित साफ आकाश मे ही सूरज का प्रकाश प्रकट होता है।

(१२०) जिसका मन राग अर्थात् मोह मे रँगा हुआ है उसको संतदेव अर्थात् परमात्मा नजर नहीं आता है जैसे मैले दर्पण मे प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता है—हे शिष्य तू ऐसा जान इसमें सन्देह नहीं है।

(१२१) जिसके मन मे स्त्री बसती है उसके मन में ब्रह्म अर्थात् शुद्ध परमात्मा नही बसता है क्योंकि एक म्यान में दो तलवार नहीं समा सक्ती हैं।

(१२२) ज्ञानी जीव के निर्मल मनमे अनादि अनन्त देव निवास करता है जैसे हंस पक्षी सरोवर में निवास करता है। हे शिष्य ! हमको यह ही बात सूझती है।

(१२३) देव अर्थात् परमात्मा जो अविनाशी है कर्मो से रहित है और ज्ञानमयी है वह देवालय अर्थात् मन्दिर मे नहीं है, पाषाण की प्रतिमा में नही है, पुस्तक में नहीं है और चित्राम में नहीं है वह समभाव रूप मन में बसता है।

(१२४) मन परमेश्वर से मिल गया और परमेश्वर मन से मिल गये अर्थात् दोनों एक होगये अब पूजा किसकी करिये।

(१२५) जिसने मन को विषय कषाय से रोककर परम निरंजन अर्थात् शुद्ध आत्मा में लगाया है वह ही मोक्ष के मार्ग पर है क्योंकि मंत्र तंत्र आदिक अन्य कोई भी उपाय मोक्ष मार्ग नहीं है।

(१२६) हे गुरु मुझको मोक्ष, मोक्ष का मार्ग और मोक्ष का फल बताओ जिससे मैं परमार्थ को जानूं।

(१२७) हे शिष्य तू मोक्ष, मोक्ष का फल, और मोक्ष का कारण पूछता है सो हम जिनवाणी के अनुसार कहते हैं तू निश्चल होकर सुन।

(१२८) धर्म अर्थ और काम इन तीनों से ज्ञान के पक्ष में मोक्ष उत्तम है क्योंकि इन तीनों में ज्ञान का आनन्द नहीं है, [भावार्थ]—धर्म अर्थ काम और मोक्ष यह चार पुरुषार्थ जगत में प्रसिद्ध हैं परन्तु ज्ञान का परम आनन्द मोक्ष ही में है इस हेतु इन सब में मोक्ष ही सबसे उत्तम है।

(१२९) यदि मोक्ष उत्तम न होता तो धर्म अर्थ और काम को छोड़ कर श्री तीर्थंकर भगवान् †परलोक (मोक्ष) में क्यों ठहरते?

(१३०) यदि मोक्ष में उत्तम सुख न होता तो मोक्ष उत्तम क्यों कहा जाता जो मोक्ष अर्थात् छूटना उत्तम न होता तो पशु जो बंधन में बंधे रहते हैं वह क्यों छूटना चाहते? (सकल बंधनों से छूटने को ही मोक्ष कहते हैं)

---

† परलोक अर्थात् प्रधान लोक—मोक्ष।

(१३१) जो मोक्ष में जगत् से अति विशेष गुण न होते तो तीन लोक मोक्ष को अपने सिरपर क्यों धरता अर्थात् लोक शिखर पर मोक्ष स्थान इसही हेतु है कि उसमें तीन लोक से अधिक गुण हैं।

(१३२) यदि मोक्ष में अति उत्तम सुख न होता तो सिद्ध भगवान् सदा काल मोक्ष में क्यों रहते ?

(१३३) हरिहर, ब्रह्मा, जिनेश्वर और सर्व मुनि और भव्य पुरुषों ने परम निरंजन परमात्मा को मन में धारण करके मोक्ष का ही साधन किया है।

(१३४) सब जीव मोक्ष को इस कारण चाहते हैं कि तीन लोक में सिवाय मोक्ष के और कोई सुख का कारण ही नहीं है।

(१३५) कर्म कलंक से रहित होकर परमात्मा स्वरूप की आत्मा को ही ज्ञानी लोग मोक्ष कहते हैं ऐसा तू जान।

(१३६) केवल दर्शन केवल ज्ञान अनन्त सुख अनन्त-वीर्य आदिक परम गुण मोक्ष के फल है और यह फल कभी अलग नहीं होते हैं अर्थात् नित्य रहते हैं और इनके सिवाय और कोई फल नहीं है।

(१३७) व्यवहार में सम्यक् दर्शन सम्यक् ज्ञान सम्यक्-चारित्र यह तीन मोक्ष के कारण हैं और निश्चय मे शुद्ध आत्मा ही मोक्ष का कारण है।

(१३८) जीव आपही अपनी आत्मा को देखता है जानता है और अनुभव करता है इस हेतु एक आत्मा ही जो दर्शन ज्ञान और चारित्र रूप है मोक्ष का कारण है।

(१३९) व्यवहार नयका यह कथन है कि सम्यक् दर्शन सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र इन तीनों को तू अच्छी तरह जान जिससे तू पवित्र हो जावे।

(१४०) जिस प्रकार जगत मे द्रव्यस्थित हैं उनको उसही प्रकार यथावत् जानकर अपनी शुद्ध आत्मा में निश्चल स्थिति होना सम्यक् दर्शन है।

(१४१) द्रव्य जो तीन लोक में भरे हुए हैं वह छै ६ हैं उनका आदि और अन्त अर्थात् उत्पत्ति और विनाश नहीं है, ज्ञानी पुरुषों ने ऐसा कहा है।

(१४२) एक जीव द्रव्य चेतन है और पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल यह पांच द्रव्य अचेतन हैं यह सब द्रव्य भिन्न भिन्न हैं।

(१४३) अमूर्तिक है ज्ञानमयी है परमानन्द स्वरूप है आत्मा अर्थात् जीव को तू ऐसा जान वह अविनाशी और निरंजन है।

(१४४) पुद्गल छै प्रकार के हैं और रूपी है पुद्गल के सिवाय अन्य पांच द्रव्य अरूपी है अर्थात् एक पुद्गल ही रूपी है और धर्म द्रव्य चलने को सहकारी है और अधर्म द्रव्य ठहरने को सहकारी है ऐसा सर्वज्ञदेव ने कहा है।

(१४५) जिसके पेट में सब द्रव्य वसते हैं अर्थात् सर्व पदार्थों को अवकाश अर्थात् ठिकाना देता है उसको तू आकाश जान श्री जिनेन्द्रदेव ने ऐसा कहा है।

(१४६) तू काल द्रव्य उसको जान जिसका वर्तना लक्षण है अर्थात् सर्व पदार्थों के परिणमन को जो सहकारी कारण है।†
(१४७) जीव पुद्गल और काल इन तीनों के सिवाय जो द्रव्य हैं अर्थात् धर्म अधर्म और आकाश यह तीनों एक एक और अखंडित द्रव्य हैं। [भावार्थ]—जीव भी बहुत हैं और ईंट पत्थर लोहा लकड़ी आदिक पुद्गल भी बहुत हैं और काल के भी समय बहुत हैं परन्तु आकाश एक ही है और उसके टुकड़े भी नहीं हो सके हैं।

(१४८) जीव और पुद्गल के सिवाय जो चार द्रव्य हैं अर्थात् धर्म अधर्म आकाश और काल इन चारों में हिलना चलना, अर्थात् क्रिया नहीं है ज्ञानवान् पुरुषों ने ऐसा कहा है।

(१४९) धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य यह दोनों असंख्यात प्रदेशी हैं और एक एक जीव असंख्यात प्रदेशी हैं। आकाश अनन्त प्रदेशी है पुद्गल बहुत भांति है।

(१५०) पाँचों द्रव्य लोकाकाश के अन्दर हैं और आकाश द्रव्य लोक के अन्दर भी है और लोक के बाहर भी है, अर्थात् छहों द्रव्य एकही स्थान में रहते हैं परन्तु कोई भी द्रव्य किसी दूसरे द्रव्य से मिल कर दूसरे द्रव्य रूप नहीं हो जाता है सब द्रव्य अपने अपने ही गुणों में ठहरे रहते हैं।

---

† दिगम्बराचार्यों ने काल के अणु भिन्न भिन्न माने हैं जैसे रत्नों के ढेर में रत्न भिन्न भिन्न रहते हैं आपस में जुड़ते नहीं। और श्वेताम्बराचार्यों ने काल द्रव्य उपचार से माना है और उसके भिन्न भिन्न अणु नहीं माने।

[तत्त्व केवली गम्य]

(१५१) जीव से प्रथक् जो पांच द्रव्य हैं वह अपने अपने गुण के अनुसार अपना अपना कारज करते हैं इनहीं के उपकार को मान कर जीव चतुर्गति रूप संसार के दुःखों को भोगता हुआ भ्रमता रहता है।

(१५२) हे जीव तू इन पांचों ही द्रव्यों को दुःख का कारण जान और इनको छोड़कर मोक्ष मार्ग को ग्रहण कर जिससे मोक्ष की प्राप्ति हो।

(१५३) व्यवहार नय से मैंने सम्यक् दृष्टि का स्वरूप कहा है इसही प्रकार सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र का स्वरूप सुन जिससे तू परमेष्ठी को पावै।

(१५४) जो द्रव्यों को जैसे वह है तैसा ही जानता है और आत्मा को पहचानता है वह सम्यक् ज्ञानी है।

(१५५) जो आपको और परको जान कर और मानकर परभाव से वचता है वह ही अपनी शुद्ध आत्मा में स्थिर होता है जानों कि उसको सम्यक् चारित्र है!

(१५६) जो रत्नत्रय अर्थात् सम्यक् दर्शन सम्यक्ज्ञान और सम्यक् चारित्र की सेवा करता है उसके लक्षण तू इस प्रकार जान कि अनेक गुण मंडित जो एक शुद्ध आत्मा है उसके सिवाय अन्य किसी पदार्थ का वह ध्यान नहीं करता है।

(१५७) जो कोई आत्मा को अभेद रत्नत्रय स्वरूप निर्मल ज्ञानमयी कहता है वह पुरुष शिवपद अर्थात् मोक्ष का आराधक होकर अपनी शुद्ध आत्मा ही को ध्यावै है।

(१५८) जो अपनी गुणमयी और निर्मल आत्मा को अनुभव करके ध्यान करते है वे महामुनि अवश्य थोड़े ही काल में मोक्षपद को प्राप्त होते हैं।

(१५९) विशेष अर्थात् भेदाभेद रूप जानने को छोड़ कर जो सर्व वस्तु का सत्ता मात्र जानना जीव को सबसे प्रथम होता है वह दर्शन है।

(१६०) †दर्शन पहले होता है और ज्ञान पीछे होता है जिससे वस्तु विशेष रूप अर्थात् भेदाभेद रूप जाना जाता है वह ज्ञान है।

(१६१) परिग्रह रहित ज्ञानी ध्यान में तल्लीन होकर सुख और दुःख दोनों को समभाव कर सहता है अर्थात् सुख में हर्ष और दुःख मे रंज (शोक) नहीं मानता है दोनों को बराबर समझता है इससे उसके कर्मों की निर्जरा होती है।

(१६२) जो मुनि सुख और दुःख दोनो का मनमे समभाव करके सहता है उसको पुण्य और पाप दोनों का संवर होता है अर्थात् न पुण्य का बंध होता है और न पाप का। [भावार्थ]— कर्मों का आश्रव उसको नहीं होता है।

---

† दर्शनावरण कर्म के क्षयोपशय से उत्पन्न होने वाला दर्शन [वस्तु है ऐसा बोध] होकर पीछे से ज्ञान [विशेष बोध] होता हैं, और दर्शन मोहनीय के अभाव से उत्पन्न होने वाला दर्शन [समकित व्यवहार ज्ञान के पीछे होता है, नव तत्वों को स्याद्वाद शैली से ग्रहण त्यागरूप अन्तर उपयोग सहित जानने वाला यथार्थ श्रद्धा कर सकता है। निश्चय नय से ज्ञान-दर्शन अभिन्न हैं आत्मा के गुण हैं अत: एक समय उत्पन्न होते हैं।

(१६३) समस्त विकल्प से रहित होकर जितने काल तक मुनि अपने स्वरूप में तल्लीन रहता है उतने काल तक उसके संवर और निर्जरा रहती है अर्थात् नवीन कर्मों की उत्पति नहीं होती और पूर्व कर्मों का नाश होता रहता है।

(१६४) जो मुनि समस्त परिग्रह को त्यागकर समभाव धारण करता है वह पूर्व कृत कर्मों का नाश करता है और नवीन कर्मों का पैदा होना बन्द करता है।

(१६५) जो समभाव करता है उसके दर्शन, ज्ञान और चरित्र तीनों हैं और जो इससे अर्थात समभाव से रहित है उसके इन तीनों में से एक भी नहीं होता है श्री जिनेन्द्र देव ने ऐसा कहा है।

(१६६) जब तक ज्ञानी पुरुष समभावी रहता है तब तक वह संयमी है और जब कषाय के वश होता है तब असंयमी होता है।

(१६७) जिससे मनमें कषाय उत्पन्न होती है वह त्यागने योग्य मोह है मोह और कषाय के त्याग से समभाव प्राप्त होता है।

(१६८) जो मुनि तत्त्व अतत्व को जानकर और समभाव धारण करके अपनी शुद्ध आत्मा में लीन हैं इस जगत् में वह ही सुखी हैं।

(१६९) निन्दा स्तुति में जो समभाव करता है वह दो दोषों का भागी होता है एक तो यह कि वह अपने बंध का अर्थात् कर्म-बन्धन का नाश करता है और संसार की रीति से विपरीत प्रवर्तने के कारण जगत के जन उसको बावला समझते हैं अर्थात् जगत् लोग उसको बावत उल्टी समझ धारण। करते हैं। [भावार्थ] जगत के लोग बावले हो जाते हैं

(१७०) निन्दा स्तुति में जो सम-भाव करता है। उसको औरभी दो दोष होते हैं वह मिले हुए अपने शत्रु को छोड़ता है और लीन होकर पराधीन होता है। [भावार्थ]—कर्म शत्रु को त्यागता है और अपनी आत्मा में लीन होता है अर्थात् अपनी आत्मा के आधीन हो जाता है।

(१७१) निन्दा स्तुति में जो समभाव करता है उसको अन्य भी दो दोष होते हैं वह विकल अर्थात् शरीर से रहित होकर अकेला जगत के ऊपर चढ़ता है अर्थात् मोक्ष को जाता है।

(१७२) रात्रि में जगत के सर्व जीव सो जाते हैं परन्तु जोगी अर्थात् मुनि महाराज जागते रहते हैं अर्थात् धर्म ध्यान में सावधान रहते हैं और जब सारा जगत् जाग उठता है अर्थात् जगत के लोग अपने कार्य व्यवहार में लगते है उसको जोगी लोक कहते हैं कि अंधकार हो रहा है और जगत के जीव सो रहे हैं क्योंकि जगत् के जीवों का संसार व्यवहार में लगना उनकी अज्ञानता के ही कारण होता है, [भावार्थ]—मुनि महाराज की यह भी निन्दा-स्तुति की गई है कि वह उल्टी चाल चलते हैं रात को तो जागते हैं और दिन को रात बताते हैं। (पाप में शून्य चित्त-निन्द्रालू और धर्म में जागृत)

(१७३) ज्ञानी पुरुष समभाव को छोड़कर किसी वस्तु में राग नहीं करता है जिस ज्ञानमयी को वह प्राप्त होना चाहता है वह आत्मा का ही स्वभाव है।

(१७४) ज्ञानी पुरुष न किसी वस्तु की वार्ता करता है न

वार्ता कराता है न किसी की स्तुति करता है और न निन्दा कराता है वह जानता है कि सिद्ध अर्थात् मोक्ष का कारण समभाव ही है।

(१७५) परम मुनि परिग्रह से न राग करते हैं और न द्वेष करते हैं वह जानते हैं कि आत्मा का स्वभाव परिग्रह से भिन्न है।

(१७६) परम मुनि विषयों के ऊपर राग द्वेष नहीं करते हैं वह जानते हैं कि आत्मा का स्वभाव विषयों से भिन्न है।

(१७७) परम मुनि देह से भी राग द्वेष नहीं करते हैं वह जानते हैं कि आत्मा का स्वभाव देह से भिन्न है।

(१७८) †व्रत अव्रत में भी परम मुनि राग द्वेष नहीं करते हैं वह इनको बंध का हेतु समझते हैं यह ही इनका स्वभाव है अर्थात् †व्रत से पुण्य और अव्रत से पाप होता है।

(१७९) जो कोई बंध और मोक्ष का हेतु नहीं जानता है वह मिथ्यात्त्व के उदय से पुण्य और पाप को दो भेद रूप जानता है अर्थात् पुण्य को अच्छा समझता है और पाप को बुरा—भावार्थ—ज्ञानी पुरुष पुण्य और पाप दोनों को त्यागता है।

(१८०) मोक्ष के जो कारण कहे गये हैं अर्थात् दर्शन ज्ञान और चारित्र को जो कोई आत्मा का स्वरूप नहीं जानता है वह इसमें भेद करता है।

---

†व्यवहार नय की दृष्टि से व्रत निर्जरा का कारण है। निश्चय नय की अपेक्षा से व्रत [बाह्य क्रिया] पुण्य का कारण है और शुद्धोपयोग समभाव [आभ्यन्तर व्रत] निर्जरा का कारण है।

(१८१) ‡जो कोई पुण्य और पाप दोनों को बराबर नहीं मानता है अर्थात् दोनों को ही मोक्ष के विपरीत बन्ध नहीं समझता है परन्तु पुण्य को अच्छा जानता है वह मोह के वश होकर संसार में रुलता है और चिरकाल तक दुःख भोगता है।

(१८२) ज्ञानी लोग ऐसा कहते हैं कि वह पाप भी श्रेष्ठ और सुन्दर है जिसके कारण जीव दुःख को जानकर मोक्ष मार्ग में लग जावे।

(१८३) ज्ञानी पुरुष ऐसा कहते हैं कि वह पुण्य भी भला नहीं है जो जीव को राजादिक की विभूति देकर अर्थात् विषय कषाय में लगा कर दुःख उत्पन्न करता है।

(१८४) निःसन्देह मुझको सम्यक् दर्शन श्रेष्ठ है चाहे उसके होने से मरण ही प्राप्त होता हो निःसन्देह मुझको दर्शन की विमुखता अर्थात् मिथ्यात्व पसन्द नहीं है चाहे उस मिथ्यात्व के होते हुए पुण्य ही प्राप्त होता है।

(१८५) जो जीव सम्यक् दर्शन के सन्मुख हैं वह निःसन्देह सुख पाते हैं अर्थात् मोक्ष में जाते हैं और जो इसके बिना हैं अर्थात् मिथ्या दृष्टि हैं वह पुण्य करते हुए भी अनन्त दुःख भोगते हैं भावार्थ अनन्त दुःख रूप संसार में रुलते हैं।

(१८६) देव, शास्त्र और मुनि की भक्ति से पुण्य होता है और परंपरा से कर्मों का क्षय अर्थात् मोक्ष होता है संत लोग ऐसा कहते हैं।

---

‡ निश्चय नय से

(१८७) जो कोई देव, गुरु, शास्त्र से द्वेष करता है उसको अवश्य पाप होता है जिससे वह संसार में रुलता है अर्थात् इनकी भक्ति करने से पुण्य और इनकी निन्दा करने से पाप होता है पाप और पुण्य दोनों ही से संसार परिभ्रमण है।

(१८८) पाप से जीव नरक और तिर्यंच गति को पाता है और पुण्य से देव गति मिलती है और पाप पुण्य दोनों मिलकर मिश्र से मनुष्य गति पाता है और पाप पुण्य दोनों के क्षय होने से मोक्ष को प्राप्त होता है।

(१८९-१९०-१९१) +गुणो पुरुषों को वंदना, अपनी निन्दा करना, पश्चाताप करना और प्रतिक्रमण यह तीनों क्रिया जो पुण्य के उपजाने वाली है उनमें से एक को भी केवल ज्ञानी पुरुष नहीं करता है। एक ज्ञानमयी और शुद्ध आत्मा केध्यान को छोड़ कर पवित्र भाव का धारक केवल ज्ञानवान वंदना, आलोचना और प्रतिक्रमण नहीं करता है। वंदना, आलोचना और प्रतिक्रमण वही करता है जिसका भाव अशुद्ध है और जिसका मन शुद्ध नहीं उसके वीतराग संयम नहीं है। भावार्थ मोक्ष की सिद्धि करने वाला तो शुद्ध आत्म ध्यान मे लगता है और पुण्य क्रियाओं को अर्थात् शुभोपयोग को भी त्यागता है क्योंकि शुभो-पयोग से शुद्ध और पवित्र भाव नहीं होते हैं पुण्य बंध ही होता है और मोक्ष होता है शुद्ध भाव से इस कारण पुण्य बंध के कार्य

+यह वचन निश्चय नयकी प्रधानता के है।

भी वह नहीं करता है, वंदना आदिक शुद्ध भाव वीतराग नहीं है और जब भाव शुद्धि नहीं तब वीतराग संयम नहीं अर्थात् मोक्ष की सिद्धि करने वाले का संयम शुद्धात्म स्वरूप में लीन होना ही है।

(१९२) उसका ही अर्थात् शुद्धोपयोगी का ही संयम शुद्ध है उसही का शील शुद्ध है उसही का दर्शन ज्ञान शुद्ध है उसही का कर्मों का क्षय करना शुद्ध है उसही का प्रधानपना अर्थात् परमात्मा होना शुद्ध है।

(१९३) चतुरगति रूप दुःखसागर में पड़े हुए जीव का जो उद्धार करता है वह अपना विशुद्ध भाव है जिसको धर्म कहते हैं इस कारण शुद्ध भाव ग्रहण करना चाहिये।

(१९४) मुक्ति प्राप्ति का मार्ग एक विशुद्ध भाव ही है और कोई मार्ग नहीं है जो मुनि शुद्ध भावों से गिरता है उसकी मुक्ति कैसे हो सक्ती है।

(१९५) जहां चाहे जावै जो चाहे क्रिया करे परन्तु जिसका मन शुद्ध नहीं है उसको मोक्ष नहीं प्राप्त हो सक्ता है।

(१९६) शुभ परिणामों स धर्म अर्थात पुण्य होता है और अशुभ परिणामों से अधर्म अर्थात पाप होता है और इन दोनों से रहित होकर शुद्ध परिणामों से कर्म्म बंध ही नहीं होता है। [भावार्थ] न पुण्य होता है और न पाप।

(१९७) दान करने से भोगों की प्राप्ति होती है इन्द्रियों को जीतने अर्थात् तप करने से स्वर्ग का इन्द्र होता है और ज्ञान से जन्म मरण से रहित अवस्था अर्थात् परम पद को प्राप्त होता है।

(१९८) श्री वीतरागदेव ने ऐसा कहा है कि ज्ञान से ही मोक्ष होती है जो जीव ज्ञान विहीन है वह चिरकाल तक संसार में रुलता है। (ऐसा जानकर ज्ञान की प्राप्ति अतिशय करना चाहिये) ।

(१९९) ज्ञान विहीन होकर जीव किसी प्रकार भी मोक्षपद प्राप्त नहीं कर सक्ता है जैसे कि कितना ही पानी विलोया जावे परन्तु हाथ चिकना नहीं होगा। (ज्ञान ही से दुःखों से छुटकारा होता है)

(२००) निज शुद्ध आत्मा के बोध से रहित जो ज्ञान है वह कुछ कार्यकारी नहीं है वह दुःख का ही कारण है।

(२०१) वह ज्ञान नहीं है जिससे राग द्वेष उत्पन्न हो ज्ञान के सूर्य की किरणों से प्रकाश होने पर यह जीव राग रूप अंधकार को किस प्रकार भोग सक्ता है अर्थात् जैसे सूर्य के उदय में अंधेरा नहीं रहता इसही प्रकार ज्ञान प्राप्त होने पर राग द्वेष नहीं रहता है।

(२०२) ज्ञानी पुरुष को आत्म स्वरूप के सिवाय अन्य कोई वस्तु सुन्दर नहीं है जिनका मन विषयों में नहीं रमता है वह ही परमार्थ को जानते हैं।

(२०३) ज्ञानी का चित्त आत्मा के सिवाय और किसी वस्तु में नहीं लगता है जिसने उत्तमरत्न चिंतामणि को जान लिया है वह कांच को क्या गिनता है।

(२०४) कर्मों के फल के भोगने में जिसका राग दूर नहीं हुआ है अर्थात् जो सुख दुःख मानता है वह फिर नवीन कर्म बांधता है कर्मों का उदय आना और फल देना तो सचित कर्मों का नाश होना है परन्तु जो सुख दुःख मानता है वह आगामी को फिर कर्म बांध लेता है।

(२०५) कर्मों के फल भोगने में जो जीव मोह के कारण शुभ अशुभ भाव करता है वह नवीन कर्मों को उत्पन्न करता है।

(२०६) जिसके मन में रंच मात्र भी राग रह गया है वह यदि परमार्थ को जानता भी है तो भी वह कर्मों के बंधन से नहीं छूटता है।

(२०७) जो पुरुष शास्त्र को समझता है और तपश्चरण करता है परन्तु परमार्थ को नहीं जानता है वह कर्मों का नाश नहीं कर सक्ता है और परमार्थ अर्थात् मोक्ष को नहीं पा सक्ता है।

(२०८) शास्त्र को पढ़कर भी जो कोई विकल्प को दूर नहीं करता है वह निर्मल शुद्ध परमात्मा को जो सांसारिक जीवों के देह में बसता है नहीं जानता है।

(२०९) लोक में सर्व शास्त्र बोध होने के निमित्त ही पढ़े जाते हैं-शास्त्रों के पढ़ने से भी जिसको श्रेष्ट बोध नहीं हुआ अर्थात् परमार्थ को नहीं जाना वह किस हेतु से मूर्ख नहीं है अर्थात् अवश्य वह अत्यन्त मूर्ख है।

(२१०) जो कोई अक्षरों को ही ढूंढ़ता है और आत्मा में

चित्त नहीं देता है वह ऐसा है जैसे कोई मनुष्य वहुत सी पराल अर्थात् भूसी को जिसमें अनाज बिलकुल न हो इकट्ठी करता है।

(२११) तीर्थ स्थानों में भ्रमने से मूढ़ मति को मोक्ष नहीं हो सक्ती है इसही प्रकार ज्ञान रहित जीव मुनि नहीं हो सकता है।

(२१२) ज्ञानी और मूर्ख मुनि में वड़ा भारी अन्तर है ज्ञानी तो जीव को शरीर से भिन्न जान कर देह को भी छोड़ना चाहता है।

(२१३) और जो मूर्ख है वह अनेक प्रकार धर्म के मिस अर्थात् वहाने से सारे जगत् को ग्रहण करना चाहता है दोनों में अर्थात् ज्ञानी और मूर्ख साधु में यह भेद है।

(२१४) चेला चेली और शास्त्र मे मूर्ख साधु निःसन्देह हर्ष मानता है परन्तु ज्ञानी पुरुष इसको वंध का कारण जानकर लज्जा करता है।

(२१५) वस्त्र पात्र मकान उपाधि आदिक और चेला चेली यह सब मुनि को मोह पैदा करके नीचे गिराते हैं।

(२१६) जिसने सिर के वालों को लोच करके मुनि रूप धारण किया है परन्तु सर्व परिग्रह को नहीं छोड़ा है अर्थात् राग द्वेष जिसमें विद्यमान है उसने अपने आपको ठगा है। (ममता सोही परिग्रह है—"मुच्छा परिग्गहो वुत्तो")

(२१७) जो मुनि लिंग धारण करके फिर इष्ट वस्तु को अर्थात जो वस्तु अच्छी मालूम हो उसको ग्रहण करता है वह वमन अर्थात क़ै की हुई वस्तु को फिर खाता है।

(२१८) लोभ वा यशकीर्ति के वास्ते जो मुनि शिव संग को छोड़ता है अर्थात् शुद्ध आत्म ध्यान से डिगता है वह एक कील के वास्ते राजमहल को जलाता है वा गिराता है।

(२१९) जो मुनि परिग्रह से ही अपने को बड़ा मानता है वह परमार्थ को नहीं पहचानता है परमार्थ कथन में श्री जिनेन्द्रदेव ने ऐसा कहा है।

(२२०) जो परमार्थ को पहचानते हैं वह ऐसा कहते हैं कि जीव में छोटा बड़ा कोई नहीं है सबही जीव परमब्रह्म हैं।

(२२१) जो मुनि रत्नत्रय की भक्ति करता है उसका यह लक्षण अर्थात् पहचान है कि वह सब जीवों को समान मानता है जीव किसी ही प्रकार का शरीरधारी हो वह उसमें किसी प्रकार का भेद नहीं करता है, अर्थात् यह नहीं कहता है कि यह तिर्यंच है वह मनुष्य है यह गधा है यह घोड़ा है।

(२२२) तीनों लोक में बास करने वाले जीवों में मूर्ख लोक भेद करते हैं अर्थात् उनको नारकी, देव, मनुष्य आदिक समझते हैं परन्तु ज्ञानी पुरुष सर्व जीवों को ज्ञानमयी अर्थात् एक ही प्रकार के समझते हैं।

(२२३) सबही जीव ज्ञानमयी है और जन्म मरण से रहित हैं अर्थात् किसी जीव का आदि अन्त नहीं है सब जीव सदा से हैं और सदा रहेंगे और जीव प्रदेश की अपेक्षा भी सब जीव समान हैं और शुद्ध गुण अर्थात् अनन्त दर्शन अनन्त ज्ञान अनन्त सुख आदिक गुणों की अपेक्षा भी सब जीव एक से ही हैं।

(२२४) श्री जिनेन्द्रदेव ने जीव का लक्षण दर्शन और ज्ञान वर्णन किया है जिसके मन में प्रभात हुई है अर्थात् ज्ञान का प्रकाश हुआ है वह जीवों में भेद नहीं करता है अर्थात् सबको दर्शन और ज्ञान की शक्ति वाला मानता है।

(२२५) तीन लोक मे वसते हुए परब्रह्म स्वरूप आत्माओ में जो कोई भेद नहीं-करते हैं वह परमात्मा का प्रकाश करने वाले योगी सर्व जीवों को निर्मल और शुद्ध मानते हैं।

(२२६) जो मुनि राग-द्वेष आदिक विपरीत भावो को दूर करके सर्व जीवों को समान जानते हैं वह समभाव में स्थिर होकर शीघ्र निर्वाण पद को प्राप्त करते हैं।

(२२७) जो कोई दर्शन और ज्ञान को जीव का लक्षण जानता है वह शरीर के भेद से जीवों में कैसे भेद कर सक्ता है अर्थात् भेद नहीं करता है।

(२२८) जो कोई शरीर के भेद से जीवों में भेद करते हैं वह दर्शन ज्ञान और चारित्र को जो आत्मा के लक्षण हैं नहीं जानते हैं।

(२२९) शरीर का छोटा वड़ा और वालक और वृद्ध आदिक होना यह सव कर्मों के वस से हैं परन्तु निश्चयरूप अर्थात् असलियत में सर्व जीव सर्वथा सर्वकाल में एक समान ही हैं।

(२३०) शत्रु मित्र, आपा पर और अन्य सव जीवों को जो एक समान मानता है वह ही आत्मा को जानता है।

(२३१) जो सब जीवों को एक स्वभावरूप नहीं मानता है

उसको समभाव नहीं होता है समभाव भवसागर से तिरने के वास्ते नाव के समान है।

(२३२) जीवों में जो भेद हैं वह कर्मों का किया हुआ है परन्तु कर्म जीव नहीं हो जाते हैं अर्थात् जीव से भिन्न हैं क्योंकि पुरुषार्थ करने से कर्म जीव से अलग हो जाते हैं।

(२३३) तू सब जीवों को एक समान ही मान यह मनुष्य है यह तिर्यंच है इत्यादि भेद मत कर एक ही देव. अर्थात एक शुद्ध आत्मा जिस प्रकार को है तीन लोक के जीवों को तू वैसा ही जान।

(२३४) परममुनि परवस्तु को जानकर पर वस्तु का संसर्ग छोड़ते हैं, और जो परवस्तु से संसर्ग करते हैं वह निशाना चूक जाते हैं अर्थात् शुद्ध आत्म ध्यान से गिर जाते हैं।

(२३५) जो कोई समभावसे रहित है उसके साथ संग अर्थात मेल मत कर क्योंकि उनका संग करने से तू चिंता के समुद्र में पड़ जावेगा और व्याकुलता प्राप्त होकर तेरा शरीर भी जलेगा।

(२३६) दुष्ट की संगति से उत्तम गुण भी नाश हो जाते हैं जैसे अग्नि भी लोहे की संगति से घण से पीटी जाती है।

(२३७) यह मोह त्यागने ही योग्य है मोह किसी प्रकार भी भला नहीं है सर्वही संसार मोह में आसक्त हुआ दुःख उठा रहा है।

(२३८) जो स्वादिष्ट भोजन में संतुष्ट हैं और अस्वादु भोजन में द्वेष करते हैं अर्थात पसन्द नहीं करते ऐसे मुनि को तू भोजन-गृद्धि समझ वह परमार्थ को नहीं जानते हैं।

(२३९) रूपमें आसक्त हुवा पतंग और शब्द अर्थात करण इन्द्रिय में आसक्त हुवा हिरण और स्पर्श इन्द्रिमें आसक्त हुवा हाथी और गंध में आसक्त हुवा भौंरा और रस में आसक्त हुवा मच्छ नाश को प्राप्त होता है।

(२४०) तू इस लोभ का त्यागकर लोभ भला नहीं है—लोभ में ही आसक्त हुवा सारा जगत दुःख उठा रहा है।

(२४१) लोह के साथ लगने से अर्थात् लोहे का लोभ कर के अग्नि की यह अवस्था होती है कि नीचे अहरण है ऊपर से घण पड़ता है बीचमें से संडासी ने पकड़ रक्खा है और टूट टूट कर चिगारी अलग पड़ रही हैं।

(२४२) तू इस स्नेह (प्यार मुहब्बत) का त्यागकर स्नेह से भला नहीं होता है सारा जगत् नेह हीमें आसक्त हुवा दुःख उठा रहा है।

(२४३) तिलको तेल के साथ नेह लगाने से इतने दुःख उठाने पड़ते हैं कि पानी में भिगोया जाता है पैरों से दल मला जाता है फिर कोल्हू में डाल कर वार वार पीला जाता है।

(२४४) वह जीव धन्य हैं वह जीव सत्पुरुष हैं वह ही इस जीव लोक में जीते हैं जो यौवनरूपी द्रहमें पड़कर लीला करते हुवे निकलते हैं अर्थात् सम्यक् दर्शन सम्यक् ज्ञान सम्यक् चारित्र को प्रकाशते हैं।

(२४५) श्री जिनेंद्र भगवान् ने मोक्ष का साधन करने के वास्ते बहुत प्रकार का राजपाट छोड़ा तू भिक्षा से पेट भरनेवाला

अर्थात कंगाल होकर भी अपना कार्य अर्थात् मोक्षका साधन क्यों नही करता है।

(२४६) तूने संसार में भ्रमण करके महान् दुःख उठाये हैं अब तू आठ कर्मों का नाश करके परमपद अर्थात् मोक्ष को प्राप्ति कर।

(२४७) जो तू थोड़ा सा दुःख भी नहीं सह सकता है तो तू कर्मों को क्यों करता है जो चारों गति के भयंकर दुःखों के कारण हैं। (अतः हिंसा झूठ चोरी विषय-सेवन, परिग्रह क्रोध मान कपट निन्दा छोड़)

(२४८) मूर्ख जीव सारे जगत के धंधों मे पड़कर कर्म उपार्जन करता है परन्तु अपनी आत्मा का ध्यान एक क्षणमात्र के वास्ते भी नहीं करता है जो मोक्ष का कारण है। (जगत् के विचार से जगत् में भटकना पड़ता है और स्वरूप ध्यान से मोक्ष होती है)

(२४९) जो अपनी आत्मा को नही पहचानता है वह दुःख उठाता हुआ भ्रमता रहता है जिसका ज्ञान प्रकाश नहीं हुआ है वह पुत्र और कलत्र में मोहित रहता है अर्थात् आत्मा को नहीं पहचान सकता है।

(२५०) हे जीव तू घर परिवार शरीर और मित्र को अपना मत जान यह सब कर्मों के उपजाये हुए हैं-शास्त्र के जानने वालों ने इसही प्रकार देखा है।

(२५१) हे जीव घर परिवार की चिन्ता में तुझको मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता है। इस कारण तू तप की चिन्ता कर जिससे

महान् मोक्ष की प्राप्ति हो। [इच्छाओं का त्याग सो ही तप. "इच्छा निरोधस्तपः"]

(२५२) पुत्र कलत्र के वास्ते जो तू लाखों जीवों को मारता है और पाप कमाता है उसका फल तुमको अकेला ही भोगना पड़ेगा।

(२५३) हे जीव जीवों को मार कर और चूरकर जो तू दुःख देता है उससे अनन्त गुणा दुःख तुमको अवश्य सहना पड़ेगा। [परहिंसा-दुःख निश्चय में निज घात ही है]

(२५४) जीव की हिंसा करने से नरक गति होती है और अभयदान देने से अर्थात् अहिंसाव्रत धारण करने से स्वर्ग होता है, दोनों पंथ प्रकट रूप दीखते हैं जो अच्छा लगे उसही में लग। [पर-रक्षा निश्चय में आत्म रक्षा है]

(२५५) हे मूर्ख तू सब कामों मे भूला हुआ है तुस अर्थात छिलका इकट्ठा मत कर तू निर्मल शिवपद में अनुराग कर और घर्परिवार को छोड़ दे।

(२५६) संसार के सब कामों में अविनाशी अर्थात सदा रहने वाला कोई कार्य्य नहीं है दृष्टान्त रूप देखो कि मरने पर यह शरीर भी जीव के साथ नहीं जाता है। [तो धन कैसे साथ चलेगा, इसलिये शीघ्र धन का सदुपयोग करले]

(२५७) मंदिर, प्रतिमा, शास्त्र, गुरु, तीर्थ वेद, काव्य और जो कुछ फल फूल इस संसार में दीखता है वह सब ईंधन हो जायगा। भावार्थ—नित्य कोई वस्तु नहीं रहेगी।

(२५८) एक परब्रह्म अर्थात् शुद्ध आत्मा के सिवाय जगत में अन्य जो जो दशा देखने में आती है वह सब विनाशक है तू इस प्रकार समझ।

(२५९) सूर्य्य के उदय समय जो प्रकाश होता है वह अन्त में अर्थात् संध्या समय नहीं रहता है इस कारण तू उत्तम धर्म का सेवन कर धन यौवन में क्या रक्खा है। (बाल वय व जवानी ही धर्म पालन का समय है, बुढ़ापे में क्या हो सकेगा ?)

(२६०) जो कोई धर्म संचय नहीं करता है और तप नहीं करता है उसके शरीर का चमड़ा वृक्ष की समान है अथवा वह चमड़े का वृक्ष है वह अभक्ष भक्षण करके निशंक प्रवर्तता है और नरक में पड़ता है।

(२६१) अरे जीव तू जिनेन्द्र के चरणों की भक्ति कर और मित्र कलत्र आदिक को छोड़दे इन मित्र आदिक से कुछ भी प्राप्ति नहीं है वह संसार में ही डुबोने वाले हैं।

(२६२) संसारी सर्व जीव विषयों के कारणों मे जैसा अनुराग करते हैं यदि ऐसा अनुराग श्री जिनेन्द्र भाषित धर्म में करें तो संसार में न पड़ें।

(२६३) जिसने निर्मल चित्त होकर तपश्चरण नहीं किया उसने मनुष्य जन्म पाकर अपने आपे को ठगा है। (दान, शील, तप, भाव ज्ञान, समकित और चारित्र आराधन नही करने वाला निज की आत्मा को ठगता है)

(२६४) हे जीव तू इन पंच इन्द्रिय रूप ऊंटों को स्वच्छन्द

मतचरा अर्थात् इन्द्रियों को स्वच्छन्द विषय भोग मत भोगने दे वह इन्द्रियां विषयों को भोगकर तुझको संसार में गिरा देंगी ।

(२६५) हे जोगी जोग की गति बहुत कठिन है मन स्थिर नहीं होता है मन इन्द्रियों के विषय सुखों पर वारम्वार जाता है अर्थात मोहित होता है ।

(२६६) विषय सुख भोगने से फिर दुःख के परिवार को पालना है अर्थात् विषय सुख भोगने का फल वारम्वार दुःख उठाना है । हे मूर्ख जीव तू अपने कन्धे पर आप कुल्हाड़ा मत मार ।

(२६७) जो सत पुरुष विषयों को छोड़ते हैं मैं उन भागों पर किस प्रकार वारम्वार जाऊं अर्थात् वह धन्य हैं जिसने भोग की इच्छा† मुंडी (नाश) की है वह तो आपसे आपही मुंडा हुआ है इसही प्रकार चौथे काल में भी श्री अरिहन्त देवों के उपदेश से विषय कषायों को छोड़कर जो मुनि होते हैं उनका तो सहज ही मुनि होना है परन्तु जो इस पंचमकाल में विषयों को त्यागते हैं उनका आश्चर्य है वह धन्य हैं ।

(२६८) ‡पांच इन्द्रियों का जो नायक है अर्थात् मन उसको तू वश कर जिसके वश होने से सब इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं जैसे कि वृक्ष की जड़ काटने से सारा वृक्ष सूख जाता है । (मन का विजय ज्ञान व भावना से होता है)

---

† दस प्रकार के भाव मुंडन [पाच इन्द्रिय,-चार कषाय, मन का संयम] करे उसका शिर मुण्डन सफल है । (श्री ठाणांग सूत्र)

‡ जो मन मुंडो ध्यान में, इन्द्रियाँ भई निराश । तब इह आतम ब्रह्म ने कीने निज परकाश ॥ ७ ॥ [ब्रह्म विलास] ।

(२६९) हे जोव विषय भोगों में आसक्त हुए तुझको बहुत काल व्यतीत होगया है अब तू निश्चल होकर शिव संगम कर अर्थात् शुद्ध आत्मा का ध्यान कर जिससे तुझको अवश्य मोक्ष की प्राप्ति हो।

(२७०) शिव संगम अर्थात् शुद्ध आत्म ध्यान को छोड़कर हे शिष्य तू और कहीं मत जा अर्थात् अन्य किसी बात में चित्त मत लगा क्योंकि जो आत्म ध्यान में लीन नहीं होते हैं वह दुःख ही सहते हैं।

(२७१) काल भी अनादि से है और जीव भी अनादि से है और संसार सागर अनन्त है परन्तु श्री जिनेन्द्र देव और सम्यक्त्व का पता जीव के विना और कहीं न लगा अर्थात् सारे जगत को ढूंढ मारो परमात्मा और सम्यक्त्व यह दो बातें जीव के ही लक्षण में मिलेंगी। अन्य कहीं भी नहीं मिलेंगी इस कारण आत्म ध्यान ही में लगना चाहिये।

(२७२) हे जीव घर का वास अर्थात स्त्री पुत्र आदिक में रहकर घर बसाना जो है इसको तू इसके सिवाय और कुछ मत जान कि यह निःसन्देह एक अचल फाँसी तेरे टांगने को गाड़ी गई है इस वास्ते घर वास छोड़ना योग्य है। (इसीलिये चक्रवर्ती भी घर छोड़ते हैं तभी सुखी होते हैं)

(२७३) जब देही अर्थात् शरीर भी अपना नहीं है तब अन्य कौन पदार्थ अपना हो सकता है अर्थात् कोई पदार्थ अपना नहीं है इस कारण हे उत्कृष्ट जीव तू पर के कारण †शिव संगम अर्थात्

† शिव अर्थात् शुद्ध आत्मदशा [नमोऽत्थुणं]

शुद्ध आत्म ध्यान का निरादर मत कर अर्थात् आत्म ध्यान को मत छोड़।

(२७४) तू एक ही से शिव संगम कर अर्थात् एक शुद्ध आत्मा का ही ध्यान रख जिससे तुझको सुख की प्राप्ति हो अन्य किसी वस्तु की चिन्ता मत कर क्योंकि अन्य पदार्थ की चिता करने से तुझको मोक्ष की प्राप्ति नहीं होगी।

(२७५) मनुष्य शरीर की वलहारी जो देखने में अति सुन्दर है परन्तु यदि उसकी ऊपरली वारीक चमड़ी खोल दी जावै तो अति गंदा अर्थात् घिणावना है और यदि इसको आग लगजावै तो राख हो जाती है।

(२७६) देह को धोना अर्थात् कुरला करना हाथ धोना और चोपड़ना अर्थात् तेल फुलेल लगाना और कुँकुम आदिक लगाना मीठा भोजन देना यह सव निरर्थक है जैसा कि दुर्जन का उपकार करना व्यर्थ होता है।

(२७७) जैसे झाजरा अर्थात् छिद्र सहित विष्टा का पात्र हो जिसमें से विष्टा गिरता रहै ऐसा ही यह शरीर है जिसमें से मल-मूत्र आदिक निकलता रहता है—ऐसे शरीर के साथ कैसे अनु-राग किया जावै।

(२७८) विधना अर्थात् कर्मों ने जीव के साथ वैर करके समस्त दुःख तथा समस्त पाप और समस्त अशुचि पदार्थ इकट्ठे करके यह शरीर वनाया है।

(२७९) हे ज्ञानी ऐसी घिनावणी देह के साथ प्रीति करने में

लज्जा कर तू इससे क्यों रमता है इसको छोड़ और अपनी आत्मा को निर्मल करने के अर्थ धर्म कर।

(२८०) यह जो देह है इसका तू त्याग कर, देह भली नहीं है देह से भिन्न जो ज्ञानमयी आत्मा है उसही की तू खोज कर।

(२८१) सत्पुरुष देह को दुःख का कारण जान कर देह की ममत्व को छोड़ते हैं जिसमें परम सुख की प्राप्ति न हो उसमें सत्पुरुष कैसे रमे अर्थात् नहीं रमते हैं।

(२८२) तू अपने आत्मीक सुख में सन्तोष कर पर पदार्थ से जो सुख उत्पन्न होता है उससे तृष्णा दूर नहीं होती है।

(२८३) आत्मा ज्ञान स्वभाव है सिवाय इसके उसका और कोई स्वभाव नहीं है ऐसा जानकर हे योगी अन्य किसी पदार्थ से तू राग मत कर।

(२८४) जिसका मन विषय कषाय में नहीं डोलता है अर्थात् संकल्प विकल्प से रहित है उसको सम्यक्त्व रूप नेत्रों से अपना शुद्ध आत्मा प्रत्यक्ष नजर आता है।

(२८५) अपनी आत्मा को पर पदार्थ में न लगाना और समाधि रूप हथियार से मन को मारना यह काम जिससे नहीं हो सकते हैं वह योगी बनकर क्या करेगा अर्थात् उसका योग वृथा है।

(२८६) अपनी ज्ञानमयी आत्मा को छोड़कर जो अज्ञानी पर पदार्थ का अवलम्बन करके ध्यान करता है अर्थात् पर पदार्थ में ध्यान लगाता है उसको केवल ज्ञान कैसे प्राप्त होगा भावार्थ जो

अपनी शुद्ध आत्मा का ध्यान नही करता उसको केवल ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता है।

(२८७) जो योगी पुण्य पाप से रहित है और शुद्ध आत्मा का ध्यान शुभ अशुभ विचार से रहित होकर करते हैं वह धन्य हैं मैं उन पर वलिहारी जाऊं।

(२८८) जो उजड़े हुए को वसाता है और वसे हुए को उजाड़ता अर्थात् अपनी आत्मा मे शुद्ध स्वभाव को प्राप्त करता है और राग द्वेषादिक भावों को दूर करता है और जिसके पाप है न पुण्य है ऐसे योगीश्वर पर मैं कैसे वलिहार जाऊं अर्थात् वह योगी धन्य है।

(२८९) हे स्वामी ऐसा उपदेश कह जिससे तुरन्त मोह टूट जावै और मन स्थिर हो जावै अन्य किसी देव आदिक से क्या प्रयोजन है अर्थात् हमारा प्रयोजन जो मुक्ति प्राप्त करने का है वह किसी देव आदिक से पूरा नहीं हो सकता है मुक्ति तो मोह के दूर होने और मन के स्थिर होने से ही प्राप्त हो सक्ती है इस कारण उसही का उपदेश कर।

(२९०) जहां अर्थात् जिस ध्यान मे नाक से निकलने वाला श्वांस तालूरंध्र (दशवाँ द्वार) से निकलने लगता है उस ध्यान में मोह तुरन्त ही दूर होजाता है और मन स्थिर हो जाता है। (ध्यान का विषय अन्य ग्रन्थों से पढ़ना चाहिये तब यह कथन समझ में आवेगा)

(२९१) जिसका निज शुद्ध आत्मा में निवास है अर्थात् जो

कोई अपनी आत्मा के ही ध्यान मे मग्न है उसका मोह नाश हो जाता है मन मर जाता है अर्थात् स्थिर हो जाता है और नाक से साँस लेना भी टूट जाता है अर्थात् साँस तालूरंध्र से निकलता है उसही को केवल ज्ञान होता है, और मुक्ति प्राप्त होती है।

(२९२) जो कोई आत्मा को आकाश के समान लोक और अलोक के बराबर अपने मन में धारण करता है उसका मोह तुरन्त टूट जाता है और परमपद प्राप्त होता है। भावार्थ—जिस प्रकार आकाश स्वच्छ है परद्रव्य से भिन्न है और लोकालोक मे व्याप्त है उसही प्रकार आत्मा भी स्वच्छ और निर्मल है और सर्वज्ञ होने के कारण उसका ज्ञान लोकालोक में फैलता है इस हेतु जो कोई आकाश के समान अपनी जीवात्मा का विचार करता है वह मोह का नाश करता है।

(२९३) हे स्वामी मैंने वृथा काल गंवाया और अपनी देह में बसती हुई अनन्त शक्तिवान् आत्मा को न जाना और आकाश के समान समता भाव मनमें धारण न किया।

(२९४–२९५) सर्व प्रकार के परिग्रह को दूर नहीं किया और न उपशम भाव धारण किया और मोक्ष के मार्ग को जिससे योगीजन अनुराग करते हैं नहीं जाना और वह तपश्चरण नहीं किया दुर्द्धर (कठिन) परीसह का जीतना जिसका चिन्ह है और जो सारभूत है अर्थात् मोक्ष प्राप्ति का असली कारण है ऐसा समभाव धारण नही किया और पुण्य और पाप को नष्ट नही किया तब यह संसार परिभ्रमण कैसे दूर हो।

(२९६) मुनि को दान नहीं दिया और श्री जिनेन्द्र देव की स्तुति नहीं की तब मोक्ष सुख का लाभ कैसे होगा।

(२९७) आधी आंख खुले रखने से वा आंख बिल्कुल बंद कर लेने से परमपद को प्राप्ति नहीं होती है वह तो चिन्ता (संकल्प विकल्प) दूर होने से ही प्राप्त होता है—भावार्थ ध्यान करने के समय आधी आंख उघाड़कर वा सारी आंख मूंदकर बैठ जाने से क्या होता है—जब तक चिन्ता दूर नही हुई है।

(२९८) यदि तू चिन्ता को छोड़देगा तो तेरा संसार परिभ्रमण दूर हो जायगा श्री जिनेन्द्र भगवान् को भी संसार अवस्था में जब तक चिता का सद्भाव रहा तब तक आत्मस्वरूप को प्राप्त न हो सके।

(२९९) हे जीव तुझमे कैसी मूर्खताई है कि संसार मे परिभ्रमण करने का कारण जो व्यवहार है उसमें तू लगता है तू सर्व प्रकार के प्रपंच से रहित अर्थात् शुद्ध ब्रह्म को जान और अपने मन को मार अर्थात् स्थिर कर।

(३००) सर्व प्रकार के राग, षटरस, पंच प्रकार के रूप को चित्त में से दूर करके तू अपनी आत्मारूपी अनन्तदेव का ध्यान कर।

(३०१) यह अनन्त आत्मा जिस स्वरूप का ध्यान करती है तिसही रूप परिणव जाती है अर्थात् उसही रूप हो जाती है जैसे फटिक मणि के साथ जिस रंग को डांक लगा दी जावे वैसा ही रंग मणि का हो जाता है आत्मा भावना के अनुसार बनता है,

(३०२) यह जो आत्मा है यह ही परमात्मा है कर्मों के वश से अपराधी हो रहा है और जब अपनी आत्मा को जान लेता है तब ही वह परम देव हो जाता है।

(३०३) जो परमात्मा ज्ञानमयी है वह ही अनन्त देव है उस ही परमात्मा का तू निःसंदेह अनुभव कर।

(३०४) जिस प्रकार निर्मल स्फाटिक मणि डांक के लगने से डांक के रंग को ग्रहण कर लेती है परन्तु असलियत में वह शुद्ध ही होती है इस ही प्रकार तू अपनी आत्मा को जान कि कर्मों के कारण उसका विपरीत भाव हो रहा है असल मे आत्मा शुद्ध ही है।

(३०५) जिस प्रकार फटिक मणि निर्मल है इस ही प्रकार आत्मा निर्मल है तू शरीर को मैला देख कर अपनी आत्मा को मैला मत मान।

(३०६ , ३०८, ३०९) जिस प्रकार लाल वस्त्र पहने हुये मनुष्य का शरीर लाल रंग का नहीं समझा जाता है इस ही प्रकार ज्ञानी जन लाल रंग का शरीर देख कर आत्मा को लाल रंग की नहीं मानते हैं।

(३०७) जिस प्रकार जीर्ण अर्थात् बोदे पुराने वस्त्र को देख कर शरीर जीर्ण नहीं माना जाता है इस ही प्रकार ज्ञानी पुरुष देह को जीर्ण देख कर आत्मा को जीर्ण नहीं मानता है।

(३०८) वस्त्र के नाश हो जाने से जिस प्रकार देह का नाश होना नहीं माना जाता है उस ही प्रकार ज्ञानी पुरुष देह के नष्ट हो जाने से आत्मा का नष्ट होना नहीं मानते हैं।

(३०९) जिस प्रकार विवेकी पुरुष वस्त्र को देह से जुदा मानता है इस ही प्रकार ज्ञानवान् आत्मा को देह से भिन्न जानता है।

(३१०) हे जीव यह शरीर तेरा वैरी है क्योंकि दुखों को उपजाता है इस कारण जो कोई तेरे शरीर का हनन करता है, मारता है उसको तू अपना मित्र समझ। (श्री गज सुकुमार मुनि-वर ऐसी भावना चिंतवन कर मोक्ष पधारे)

(३११) महा तपस्वी योगीजन पूर्व संचित कर्मों को अपने आत्मिक बल से उदय में लाकर नष्ट करते हैं वह ही कर्म यदि आप ही उदय में आकर नष्ट हो जावें तो बहुत ही भली बात है अर्थात् कर्म के उदय आने पर और किसी प्रकार का कष्ट होने पर आनन्द मानना चाहिये कि इस प्रकार यह कर्म जो उदय आ गया है अपना फल देकर नष्ट हो जावेगा कर्म के उदय से जो कष्ट आवे उसमें क्लेश नहीं मानना चाहिये। (अन्यथा नवीन कर्म बंधेंगे)

(३१२) हे जीव यदि तेरा मन खोटे वचनों को नहीं सह सकता है तो परब्रह्म अर्थात् शुद्ध आत्मा के ध्यान में लीन हो जा जिससे तेरा मन आनन्दित हो जावे।

(३१३) कर्मों के वश होकर संसारी जीवों के नाना प्रकार के भेद हो रहे हैं अर्थात् कोई पशु है, कोई मनुष्य है, कोई धनाढ्य है, कोई कंगाल है इत्यादिक और कर्मों के ही कारण यह जीव संसार मे रुलता है यदि यह जीव अपनी आत्मा में स्थिर हो जावे

अर्थात् कर्मों का नाश कर देवे तो इसको संसार में रुलना न पड़े इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

(३१४) जो मेरे अवगुणों को ग्रहण करते हैं अर्थात् मेरी बुराई करते हैं उनको मेरी बुराई करने में आनन्द आता है इस कारण मैं उनके आनन्द का हेतु हुआ अर्थात् मेरे कारण उनका उपकार हुआ ऐसा मान कर और रोष अर्थात् क्रोध को दूर करके संतोष ग्रहण करना चाहिये। (बुराई करने वाले अपनी भूल सुधारने वाले उपकारी हैं)-

(३१५) यदि तू दुःख से डरता है तो किसी प्रकार की भी चिन्ता मत कर अर्थात् चिन्ता को छोड़ जैसे जरासा कांटा भी दुःखदाई होता है ऐसे ही जरा सी चिन्ता भी दुःखदाई होती है।

(३१६) हे योगी तू मोक्ष की चिन्ता मत कर क्योंकि चिन्ता से मोक्ष नहीं मिलती है जिसने जीव को बांध रक्खा है उस ही से तू जीव को छुड़ा भावार्थ—चिन्ता को दूर कर। (निर्विकल्प शुक्ल ध्यान से मोक्ष होती है)

(३१७) समस्त विकल्पों से रहित होने को परम समाधि कहते हैं इस कारण मुनि महाराज समस्त शुभ अशुभ भावों का त्याग करते हैं।

(३१८) जो कोई परम समाधि रूप महा सरोवर में सर्वांग डूबता है अर्थात् शुद्ध आत्म ध्यान में लीन होता है वह संसार रूपी मैल को धोकर शुद्ध आत्मा हो जाता है।

(३१९) जो घोर तपश्चरण करता है और जिसने सब शास्त्र भी पढ़ लिये हैं परन्तु जिसमें परम समाधि नहीं है तो वह

शिवसंत अर्थात् अपनी शुद्ध आत्मा को नहीं देख सकता है। भावार्थ—मोक्ष नहीं पा सकता है।

(३२०) जो विषय कषाय को नाश करके परम समाधि को नहीं करते हैं वह योगी परम पद की आराधना करने वाले नहीं हैं।

(३२१) जो मुनि परम समाधि लगा कर परम ब्रह्म अर्थात् शुद्ध आत्मा का अनुभव नहीं करते हैं यह वहुत काल तक वहुत प्रकार के दुःखों को सहते रहते हैं अर्थात् संसार में भ्रमते रहते हैं।

(३२२) जब तक सर्व शुभाशुभ भाव दूर नहीं हो जाते हैं तब तक परम समाधि नहीं होती है ऐसा श्री केवली भगवान ने कहा है।

(३२३) सब प्रकार के विकल्प को दूर करके और मोक्ष मार्ग को ग्रहण करके चार घातियां कर्मों का नाश करके यह आत्मा अर्हन्त हो जाती है अर्थात केवल ज्ञान और परमानन्द प्राप्त हो जाता है।

(३२४) यह आत्मा ही अर्हन्त पद को प्राप्त करती है और आवरण रहित केवल ज्ञान से लोक अलोक की सर्व वस्तुओं को जानती है और परमानन्द मयी है।

(३२५) * श्री जिनेन्द्र भगवान् परमानन्दमयी और केवल

---

* परमातम सो आतमा, और न दूजो कोय।
परमातम को ध्यावते, यह परमातम होय॥ १॥

ज्ञान स्वभाव के धारी हैं, वही उत्कृष्ट परमपद जीवात्मा का स्वभाव है अर्थात आत्मा का असली स्वभाव वही है जो परमात्मा का है और आत्मा ही परमात्म पद को प्राप्त हो कर जिन बन जाती है।

(३२६) जो कोई पुरुष जीव को जिनेन्द्र देव मानता है और जिनेन्द्र भगवान् को जीव मानता है अर्थात यह समझता है कि संसारी जीव ही शुद्ध होकर जिनेन्द्र देव हो जाता है, वह पुरुष समभाव में स्थित हुआ शीघ्र ही निर्वाण पद को प्राप्त करता है।

(३२७) सर्व कर्मों और दोषों से रहित श्री जिनेन्द्र देव को ही हे! योगी तू परमात्म प्रकाश समझ।

(३२८) केवल दर्शन केवल ज्ञान अनन्त सुख, अनन्त वीर्य इस प्रकार अनन्त चतुष्टय के धारी भी जिनेन्द्र देव ही परम मुनि हैं और वही परमात्म प्रकाश है।

(३२९) जो परमात्मा परमपद है जिसको हरिहर वा ब्रह्मा वा बुद्ध वा परमात्म प्रकाश कहते हैं वह शुद्ध श्री जिनेन्द्र देव हैं। (शुद्ध आत्मा के शुद्ध, बुद्ध, सर्वज्ञ, शिव, अक्षय, आदि कई नाम हैं)।

जैसो आतम सिद्ध में तैसो या तन माहिं।
मोह मैल दृग लग रहा ताते सूझै नाहि ॥ २ ॥
मोह मैल रागादि का, जा क्षण कीजे नाश।
ता क्षण यह परमातमा, आपही लहे प्रकाश ॥३॥

ब्र० विलास।

(३३०) श्री जिनेन्द्र देव ने उस जीव को सिद्ध महंत बताया है जिसने ध्यान के द्वारा कर्मों का नाश करके अनन्त मुक्ति को प्राप्त किया है। [जितने अंश से ध्यान शुद्ध हो उतने अंश मुक्ति सत्य सुख होता है]।

(३३१) वह सिद्ध भगवान जन्म मरण से छूट कर और चारों गति के दुःखों से रहित होकर केवल दर्शन और केवल ज्ञान के आनन्द में मुक्ति स्थान में रहते हैं।

(३३२) जो कोई मुनि इस परमात्म प्रकाश को शुद्ध भाव से ध्याते हैं और जिन्होंने समस्त मोह कर्म को जीत लिया है वे ही परमात्म पद को पहचानते हैं। [इसलिए सदा इस ग्रन्थ को स्वाध्याय में रक्खो]

[३३३] अन्य जो मुनि परमात्म प्रकाश के भक्त हैं वह सर्व लोकालोक को प्रकाश करने वाला प्रकाश अर्थात् ज्ञान प्राप्त करते हैं।

(३३४) जो प्रति दिन परमात्मा प्रकाश का नाम लेते हैं उन का मोह कर्म तुरन्त टूट जाता है और वह तीन लोक के नाथ हो जाते हैं। [जो आत्मा को नहीं जानता वही मोह करता है]

(३३५) इस परमात्म प्रकाश ग्रन्थ को आराधन करने के वह ही योग्य है जो संसार दुःख से भयभीत हैं और निर्वाण पद को चाहते हैं।

(३३६) वह ही मुनि परमात्मा प्रकाश के योग्य हैं जिनको परमात्म पद की भक्ति है और जो विषयों में नहीं रमते हैं अर्थात् विषयभोग जिन्हें प्रिय नहीं लगते।

(३३७) जो विचक्षण ज्ञानी है और मन जिसका शुद्ध है ऐसा जो कोई पुरुष है वह ही परमात्मा प्रकाश के योग्य कहा गया है [उत्तम भावना से मन जीता जाता है ।

(३३८) यह परमात्म प्रकाश जो छन्द अर्थात् कविताई के लक्षण से रहित है अर्थात् कविताई का विचार छोड़ कर परमात्म पद का जो स्वरूप इसमें वर्णन किया गया है उसको जो कोई शुद्ध भाव से ध्यावे है उसके चारों गति के दुःख नाश हो जाते हैं।

(३३९, पंडितों को चाहिये कि वे इस ग्रन्थ में बार बार एक बात को कहने के गुण दोष को न पकड़ें क्योंकि मैंने प्रभाकर भट्ट को समझाने के अर्थ एक बात को बार बार कहा है।

(३४०) इस ग्रन्थ में यदि कोई बात मैंने युक्त अयुक्त कही है तो परमार्थ के जानने वाले मुझ पर क्षमा करें।

[३४१] जिस ज्ञान स्वरूप तत्व को परम मुनिगण नित्य अपने मनमें ध्यान करते हैं। जो तत्त्व देह से भिन्न हैं और जगत में सर्व देह धारियों की देह में बसता है जिस तत्व की देह दिव्य स्वरूप है अर्थात् ज्ञान की ज्योति से प्रकाशमान है और जो तत्व तीन लोक मे प्रतिष्ठित है अर्थात् पूजनीय है और सन्त जीवों को जिस तत्व की सिद्धि होती है। ऐसा शुद्ध तत्व जिसके हृदय में प्रकट हुआ है उसको निश्चय रूप सिद्धि प्राप्ति होती है अर्थात् वह मुक्ति पद को पाता है।

[३४२] वह शिव स्वरूप केवली भगवान् जयवन्त रहें जिनका दिव्य शरीर है और परमपद को प्राप्त हुए हैं और जो मुनियों के

नाथ हैं और जिनका यह दिव्य अर्थात् शुक्ल ध्यान हो, जो मुक्ति का देने वाला है और जो ध्यान विषय सुख में आसक्त जीवों को इस लोक में प्राप्त होना दुर्लभ है। [इसलिये विषयेच्छा छोड़कर उत्तम ध्यान चिन्तवन करके सत्य सुख प्राप्त करना चाहिये]

इस अपूर्व भावना मय ग्रन्थ को जो नित्य प्रति वांचन मनन करके आत्मा के शुद्ध गुण प्रगट करेंगे वे परमात्म-प्रकाश को पाकर अर्थात सिद्ध होकर अनन्त अव्याबाध अतीन्द्रिय निराकुल अविनाशी सत्य सुख पावेंगे। इसके भाषा संग्रह में जिनवाणी से किंचित भी विरुद्ध लिखा हो तो मिच्छामि दुक्कडं सब दोष नष्ट होकर शुद्ध मार्ग की प्राप्ति हो यही शुद्धभावना है।

अध्यात्म बत्तीसी

शुद्ध वचन सद्गुरु कहै, केवल भाषित अंग।
लोक पुरुष परिमाण सब, चौदह रज्जु उत्तंग ॥ १ ॥
घृत घट पूरित लोक में, धर्म अधर्म अकाश।
काल जीव पुद्गल सहित, छहों द्रव्य को वास ॥ २ ॥
छहों द्रव्य न्यारे सदा, मिलै न काहू कोय।
खीर नीर ज्यों मिल रहैं, चेतन पुद्गल दोय ॥ ३ ॥
चेतन पुद्गल यों मिलें, ज्यों तिल में खलि तेल।
प्रगट एक से देखिये, यह अनादि को खेल ॥ ४ ॥
वह वाके रस सों रमै, वह वासों लपटाय।
चुम्बक करषै लोह को, लोह लगै तिहँ धाय ॥ ५ ॥

जड़ परगट चेतन गुपत, द्वोविधा लखै न कोय।
यह दुविधा सोई लखै, जो सुविचक्षण होय॥ ६॥
ज्यों सुवास फल फूल में, दही दूध में घीव।
पावक काठ पषाण में, त्यों शरीर में जीव॥ ७॥
कर्म स्वरूपो कर्म में, घटाकार घटमांहि।
गुण प्रच्छन्न सब जीव के यातैं परगट नाहिं॥ ८॥
सहज शुद्ध चेतन बसै, भाव कर्म की ओट।
द्रव्य कर्म नो कर्म सों, बंधो पिंड की पोट॥ ९॥
ज्ञान रूप भगवान शिव, भाव कर्म चित्त भर्म।
द्रव्य कर्म तन कारमन, यह शरीर नो कर्म॥ १०॥
ज्यों कोंठो में धान थो, चमी मांहि कन बीच।
चमी धोय कन राखिये, कोठी धोए कीच॥ ११॥
कोठी सम नो कर्म मल, द्रव्य कर्म ज्यों धान।
भाव कर्म मल ज्यों चमी, कन समान भगवान॥ १२॥
द्रव्य कर्म नो कर्म मल. दोऊ पुद्गल जाल।
भाव कर्म गति ज्ञान मति, द्विविधि ब्रह्म की चाल॥ १३॥
द्विविधि ब्रह्म की चाल सो, द्विविधि चक्र को फेर।
एक ज्ञान को परिणमन, एक कर्म को घेर॥ १४॥
ज्ञान चक्र अन्तर गुपत, कर्म चक्र प्रत्यक्ष।
दोऊ चेतन भाव ज्यों, शुकल पक्ष तम पक्ष॥ १५॥
निज गुण निज पर जाय में, ज्ञान चक्र की भूमि।
परगुण पर परजाय सों, कर्म चक्र की धूमि॥ १६॥

ज्ञान चक्र की धरनि में, सजग भांति सब ठौर।
कर्म चक्र की नींद सों, मृषा स्वप्न की दौर॥ १७॥
ज्ञान चक्र ज्यों दरशनी, कर्म चक्र ज्यों अंध।
ज्ञान चक्र में निर्जरा, कर्म चक्र में वंध॥ १८॥
ज्ञान चक्र अनुसरण को, देव धर्म गुरु द्वार।
देव धर्म गुरु जो लखें, ते पावें भव पार॥ १९॥
भववासी जानै नहीं, देव धरम गुरु भेद।
पच्यो मोह के फन्द में, करे मोक्ष को खेद॥ २०॥
उदय सुकर्म कुकर्म कै, रुलै चतुर्गति मांहि।
निरखै वाहिज दृष्टिसों, तहँ शिव मारग नाहिं॥ २१॥
देव धर्म गुरु है निकट, मूढ न जानै ठौर।
वंधी दृष्टि मिथ्यात सों, लखैं और की और॥ २२॥
भेप धारि को गुरु कहै, पुण्यवन्त को देव।
धर्म कहै कुल रीति को, यह कुकर्म की टेव॥ २३॥
देव निरंजन को कहै, धर्म वचन परवान।
साधु पुरुप को गुरु कहै, यह सुकर्म को ज्ञान॥ २४॥
जानै मानै अनुभवै, करे भक्ति मन लाय।
पर संगति आश्रव सधै, कर्म वन्ध अधिकाय॥ २५॥
कर्म वध तैं भ्रम वढ़े भ्रमतैं लखै न वाट।
अंध रूप चेतन रहै, विना सुमति उद्घाट॥ २६॥
सहज मोह जव उपशमै, रुचै सुगुरु उपदेश।
तव विभाव भव थिति घटे, जगै ज्ञान गुण लेश॥ २७॥

ज्ञान लेश सो है सुमति, लखै मुकति की लीक।
निरखै अन्तर दृष्टि सों देव धर्म गुरु ठीक॥ २८॥
ज्यों सुपरीक्षक जौहरी, काच डाल मणी लेय।
त्यों सुबुद्धि मारग गहै, देव धर्म गुरु सेय॥ २९॥
दर्शन चारित ज्ञान गुण, देव धर्म गुरु शुद्ध।
परखै आतम संपदा, तजै सनेह निरुद्ध॥ ३०॥
अरचै दर्शन देवता, चरचै चारित धर्म।
दिढ परचै गुरु ज्ञान सों, य है सुमति को कर्म॥ ३१॥
सुमति कर्म तैं शिव सधै, और उपाय न कोय।
शिव स्वरूप परकाश सों, आवागमन न होय॥ ३२॥
सुमति कर्म सम्यक्त सों; देव धर्म गुरु द्वार।
कहत बनारसी तत्व यह; लहि पावें भव पार॥ ३३॥

कर्म छत्तीसी

परम निरंजन परम गुरु, परम पुरुष परधान।
वन्दहुं परम समाधि गत, भय भंजन भगवान॥ १॥
जिनवाणी परमाण कर, सुगुरु शीख मन आन।
कछुक जीव अरु कर्म को, निर्णय कहों बखान॥ २॥
अगम अनंत अलोक नभ, तामें लोक अकाश।
सदा काल ताके उदर, जीव अजीव निवास॥ ३॥
जीव द्रव्य की द्वैदशा, संसारी अरु सिद्ध।
पंच विकल्प अजीव के, अखय अनादि असिद्ध॥ ४॥

गगन, काल, पुद्गल, धरम, अरु अधरम अभिधान ।
अब कछु पुद्गल द्रव्य को, कहों विशेष विधान ॥ ५ ॥
चरम दृष्टि सों प्रगट है, पुद्गल द्रव्य अनंत ।
जड़ लक्षण निर्जीव दल, रूपी मूरतिवंत ॥ ६ ॥
जो त्रिभुवन थिति देखिये, थिर जंगम आकार ।
सो पुद्गल परवान को, है अनादि विस्तार ॥ ७ ॥
अब पुद्गल के बीस गुण, कहों परगट समुझाय ।
गर्भित और अनंत गुण, अरु अनंत परजाय ॥ ८ ॥
श्याम पीत उज्वल अरुण, हरित मिश्र बहु भांति ।
विविध वर्ण जो देखियो, सो पुद्गल की कांति ॥ ९ ॥
आमल तिक्त कषाय कटु, क्षार मधुर रस भोग ।
ए पुद्गल के पांच गुण, षट मानहि सब लोक ॥ १० ॥
तातो सीरो चीकनो, रूखो नरम कठोर ।
हलको अरु भारी सहज, आठ फरस गुण जोर ॥ ११ ॥
जो सुगंध दुर्गंध गुण, सो पुद्गल को रूप ।
अब पुद्गल परजाय को, महिमा कहों अनूप ॥ १२ ॥
शब्द, गंध, सुक्षम, सरल, लम्ब, वक्र लघु, थूल ।
बिछूरन, भिदन उदोततम, इनको पुद्गल मूल ॥ १३ ॥
छाया आकृति तेज दुति इत्यादिक बहु भेद ।
ए पुद्गल पर जाय सब, प्रगट ही होय उछेद ॥ १४ ॥
केई शुभ केई अशुभ, रुचिर भयानक भेष ।
सहज स्वभाव विभाव गति, अरु सामान्य विशेष ॥ १५ ॥

गर्भित पुद्गल पिंडमें, अलख अमूरति देव ।
फिरै सहज भव चक्रमें, यह अनादि की टेव ॥ १६ ॥
पुद्गल की संगति करै, पुद्गल ही सो प्रीति ।
पुद्गल को आपा गिणै, यह है भरम की रीति ॥ १७ ॥
जे जे पुद्गल की दशा, ते निज मानै हंस ।
याही भरम विभाव सों, बढ़ै करम को वंश ॥ १८ ॥
ज्यों ज्यों कर्म बिपाक वश, ठानै भ्रम की मौज ।
त्यो त्यों निज संपत्ति दुरै, जरै परिग्रह फौज ॥ १९ ॥
ज्यो वानर मदिरा पिये, विच्छू डंकित गात ।
भूत लगै कौतुक करै, त्यों भ्रमको उत्पात ॥ २० ॥
भ्रम संशय की भूल सों, लहै न सहज स्वकीय ।
करम रोग समुझै नहीं, यह संसारी जीय ॥ २१ ॥
कर्म रोग के द्वै चरण, विषम दुहूँ की चाल ।
एक कंप प्रकृति लिये, एक ऐंठि असराल ॥ २२ ॥
कंप रोग है पाप पद, अकर रोग है पुण्य ।
ज्ञान रूप है आतमा, दुहूं रोग सो शून्य ॥ २३ ॥
मूरख मिथ्या दृष्टि सों, निरखै जगकी रौस ।
डरहि जीव सब पाप सों, करहि पुण्य को हौंस ॥ २४ ॥
उपजै पाप विकार सों, भय तापादिक रोग ।
चिन्ता खेद विथा बढ़ै, दुख मानै सब लोग ॥ २५ ॥
उपजै पुन्य विकार सों, विषय रोग विस्तार ।
आरत रुद्र विथा बढ़ै, सुख मानै संसार ॥ २६ ॥

दोऊ रोग समान है, मूढ़ न जानै रीति।
कंप रोग सों भय करै, अकर रोग सों प्रीति ॥ २७ ॥
भिन्न २ लच्छण लखे, प्रगट दुहूं की भांति।
एक लिये उद्वेगता, एक लिये उपशान्ति ॥ २८ ॥
कच्छप कीसी सकुच है वक्र तुरग की चाल।
अन्धकार कोसो समय, कंप रोग के भाल ॥ २९ ॥
चक्कर कूंदसी उमंग है, अकर चन्द की चाल।
मकर चांदनी सो दिपे, अकर रोग के भाल ॥ ३० ॥
तम उदोत दोउ प्रकृति, पुद्गल की परजाय।
भेद ज्ञान विन मूढ़ मन, भटक भटक भरमाय ॥ ३१ ॥
दुहू रोग को एक पद, दुहूँ सो मोक्ष न होय।
विना शोक दुहूँ की दशा, विरला बूझे कोय ॥ ३२ ॥
कोऊ गिरे पहाड़ चढ़, कोऊ बूड़ै कूप।
मरण दुहूँ को एक सो, कहिबे को द्वैरूप ॥ ३३ ॥
भववासी दुविधा धरै, तातै लखै न एक।
रूप न जाने जलधि को कूप, कोप को भेक ॥ ३४ ॥